theaaryasamaj.org

R.N.I. No. 2391/57

ओ३म्

रजि. सं. MTR नं. 04/2013-15

अप्रैल 2015

अंक 3

तपोभूमि

मासिक

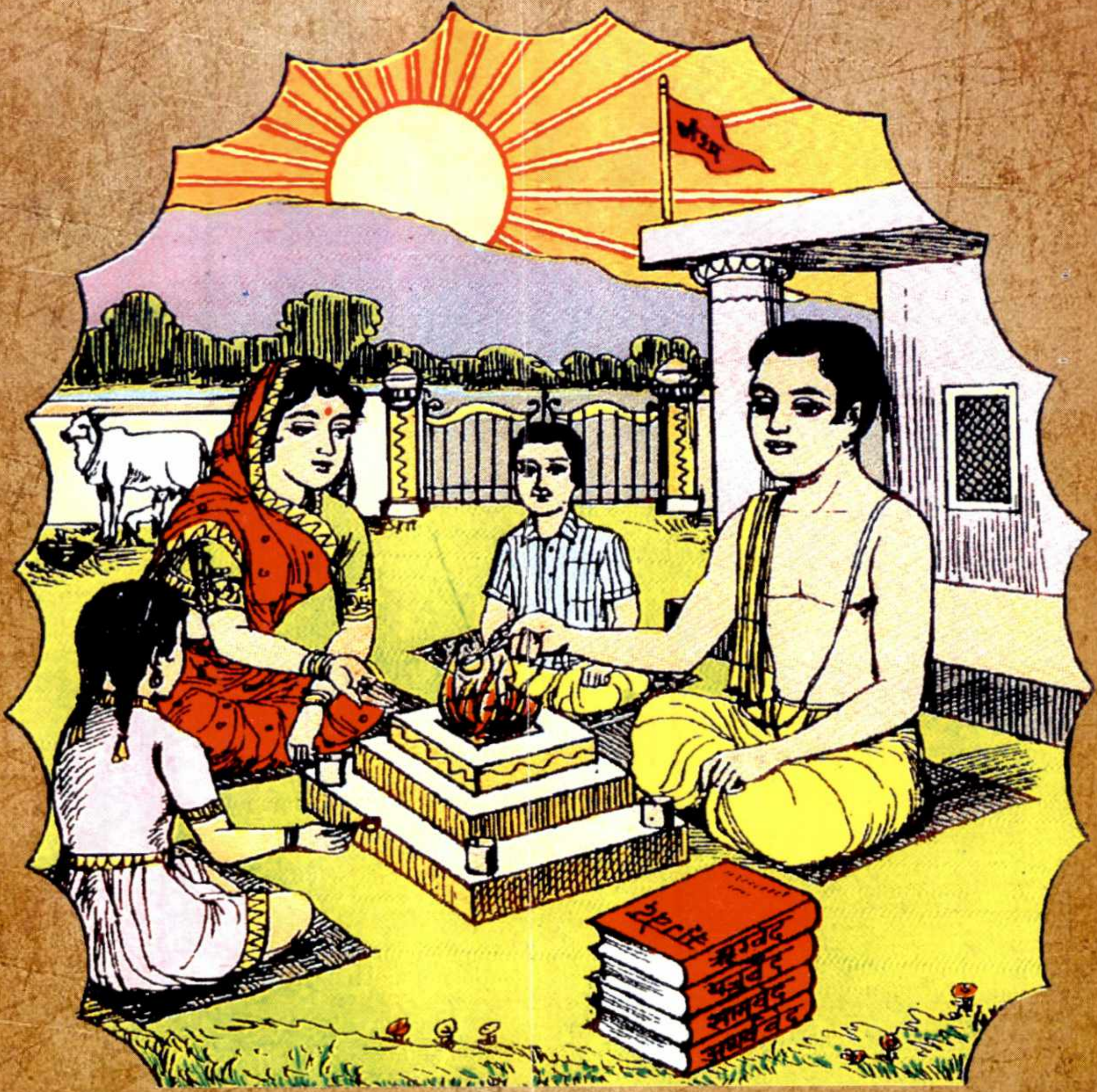

thearyasamaj.org

सम्पादकीय–

औचित्यहीन सम्मेलन

आर्यसमाज के स्थापना का उद्देश्य महर्षि दयानन्द ने आर्यसमाज के छठवें नियम में लिखा है। कि संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना। और इन तीनों उन्नतियों के लिए वेद का पढ़ना–पढ़ाना और सुनना–सुनाना परम धर्म बताया है। पर आज बड़े आश्चर्य का विषय है कि हजारों आर्यसमाजों में आर्यसमाज के उत्सव प्रतिवर्ष होते हैं। हमें भी अनेकों उत्सवों में जाने का सौभाग्य मिला पर वहाँ जाकर के यह देखकर घोर निराशा होती है कि आर्यसमाज के कार्यकर्त्ता कठोर परिश्रम कर दर–दर की ठोकरें खाकर चन्दा इकट्ठा करते हैं, और उपदेशकों और विद्वानों को मुंहमांगी दक्षिणा देते हैं। लेकिन कार्यकर्त्ताओं का यह श्रम पदाधिकारियों की मान प्रतिष्ठा और विद्वानों की दक्षिणाओं में ही समाप्त हो जाता है। यही कारण है नगरों और ग्रामों में जहाँ कभी आर्यसमाज का डंका बजता था वहाँ से धीरे–धीरे आर्यसमाजों का अस्तित्व ही समाप्त होता जा रहा है। पदाधिकारी और विद्वान् अपने गुणगानों को करने में ही मुग्ध हैं। पूर्वजों की त्याग–तपस्या और बलिदानों के परिणाम स्वरूप मौज मार रहे हैं स्वाध्याय, आत्मचिन्तन और राष्ट्र के संवेदना न रहने के कारण चिन्तन की वैचारिकधारा बिल्कुल सूख चुकी है। भजनोपदेशकों को गिने चुने भजन और मनोरंजन कराने के लिए कुछ चटपटे चुटकुले याद हैं। उन्हीं के नाम पर कमा खा रहे हैं। व्याख्यान करने वालों ने कुछ व्याख्यान रट रखे हैं। सर्वत्र उन्हीं को बोलकर अपना काम चलाते हैं। उपदेश करते समय उन्हें इस बात का भी ज्ञान नहीं होता है कि हमारे सामने बैठे हुए श्रोता किस योग्यता के हैं, क्या वे हमारे उपदेश को समझने की क्षमता रखते भी हैं या नहीं। क्या ये व्याख्यान उनके लिए उपयोगी है वा नहीं। यही हाल अधिकारियों का है वे भी अपने को सर्वज्ञ मान करके कार्य करते हैं। सभा के लिए जो व्याख्यान के विषय होते हैं उस विषय के अनुकूल क्या उनके पास श्रोता हैं या नहीं। पर वे बिना कुछ जाँच परख किये सम्मेलन का विषय निश्चित कर लेते हैं। श्रोताओं को कुछ भी समझ में नहीं आता है, आगे से वे हमारी सभाओं में आना ही बन्द कर देते हैं। और हमारे सम्मेलनों में उपस्थिति उतनी ही रह जाती है, जितनी कभी हमारे साप्ताहिक सत्संगों में हुआ करती थी और यह स्थिति आर्यसमाज में सर्वत्र एक समान ही हैं। यही समाजों की दुर्गति का कारण है कुछ दिनों पहले मुझे भी एक समाज के कार्यक्रम में जाने का सुअवसर प्राप्त हुआ। उपस्थिति लगभग 250 ढाई सौ लोगों की होगी, जिनमें युवक और युवतियों की संख्या 7–8 से ऊपर न होगी। लेकिन यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। भजन गाने वाले उपदेशक और व्याख्यान देने वाले विद्वान् उन सत्तर और अस्सी वर्ष के बुढ्ढों और बुढ़ियों में जोशीले भजन और व्याख्यान देकर पसीने–पसीने हो रहे थे। और जनता में बैठे अधिकांश लोग विरक्तभाव से या तो सो रहे थे या ऊंघ रहे थे। एक व्याख्यान देने वाले से हमने धीरे से पूछा कि जिन लोगों से चला भी नहीं जा रहा है, ऐसे लोगों के बीच में राष्ट्र–रक्षा सम्बन्धी जोशीले भजनों और प्रवचनों से क्या लाभ है? तो उन्होंने बड़ी सरलता से उत्तर दिया कि हमें तो अपनी दक्षिणा से मतलब है, लाभ होता है या नहीं यह तो आर्यसमाज ही जाने। पूरे सम्मेलन में वही गिनी

–शेष पृष्ठ सं. 35 पर

thearyasamaj.org

तपोभूमि

ओ३म् वयं जयेम (ऋक्0)
शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक कल्याण की साधिका
(आर्य जगत में सर्वाधिक लोकप्रिय मासिक)

वर्ष–61 संवत्सर 2072 अप्रैल 2015 अंक 3

संस्थापक
स्व0 आचार्य प्रेमभिक्षु

संपादक:
आचार्य स्वदेश
मोबा. 9456811519

अप्रैल 2015

सृष्टि संवत्
1960853116

दयानन्दाब्द: 192

प्रकाशक
सत्य प्रकाशन
आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग
मसानी चौराहा, मथुरा
(उ0 प्र0)
पिन कोड–281003

दूरभाष:
0565–2406431
मोबा. 9759804182

अनुक्रमणिका

लेख–कविता		पृष्ठ संख्या
वेदवाणी	–डॉ0 रामनाथ वेदालंकार	4
दयानन्द दिग्विजयम्	–आचार्य मेधाव्रत	5–8
योगेश्वर कृष्ण	–पं0 चमूपति	9–11
वीर बैरागी	–भाई परमानन्द	12–14
सुख का सच्चा स्वरूप	–आचार्य प्रद्युम्न	15–18
पण्डित वर्ग	–श्रीबुद्धगीता से साभार	19
हम रुकेंगे नहीं हम झुकेंगे नहीं	–शान्ति नागर	20–21
अज्ञानी माताओं का सन्तान पर प्रभाव	–सदानन्द स्वामी	20–22
स्वावलम्बन	–लक्ष्मीनारायण दीनदयाल अवस्थी	23–25
स्वास्थ्य के लिए धूप	–रामचरण	26
मन लगाने की विधि		27–28
बोध कथा	–स्वामी सर्वदानन्द सरस्वती	29
संकल्प–शक्ति का विकास	–आचार्य अभयदेव विद्यालंकार	30–32
ईश्वर ने दुनियां क्यों बनाई	–पं0 रामचन्द्र देहलवी	33
गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन में प्रवेश प्रारम्भ		34

❁ ❁ ❁

वार्षिक शुल्क 150/ पन्द्रह वर्ष के लिये शुल्क 1500/– रूपये

thearyasamaj.org

वेदवाणी

डॉ0 रामनाथ वेदालंकार

गोदुग्ध–जैसी मीठी वाणी बोलूँ

गोसनिं वाचमुदेयं वर्चसा माभ्युदिहि।
आ रुन्धा सर्वतो वायुस्त्वष्टा पोषं दधातु मे।। –अथर्व0 3.20.10

शब्दार्थः–

मैं (गोसनिम्) गोदुग्ध–जैसी मीठी वाणी (वाचम्) वाणी (उदेयम्) बोलूँ। हे मधुर वाणी! (वर्चसा) तेज के साथ (मा अभि) मेरे प्रति (उदिहि) उदित हो। मुझे (आ रुन्धाम्) घेर ले (सर्वतः) चारों ओर से (वायुः) प्राण। (त्वष्टा) ब्रह्माण्ड का शिल्पी परमेश्वर (पोषं दधातु) पुष्टि देवे (मे) मुझे।

भावार्थः–

मनुष्य सामाजिक प्राणी है, समाज में रहते हुए उसे अन्यों के साथ लोकव्यवहार करना होता है। लोकव्यवहार का प्रमुख साधन वाणी है। सैकड़ों जनों से उसे बातचीत करनी होती है। वाणी से वह दूसरों को अपने प्रति आकृष्ट भी कर सकता है और दूसरों से अपनी दूरी भी बढ़ा सकता है। जैसी वाणी होगी, वैसा उसका दूसरों पर प्रभाव होगा। मैं चाहता हूँ कि मैं बोलूँ, तो ऐसा लगे मानो मैं गाय के दूध की धारें छोड़ रहा हूँ। गाय का दूध मधुर भी होता है और बिलोने पर नवनीत भी देता है। वैसे ही मेरी वाणी मधुर भी हो, और नवनीत भी दे, चिकनाहट भी छोड़े। वह रूखी–सूखी न हो, प्यार की चिकनाहट से भरी हो। चिकनी वाणी वक्ता से दूसरों को जोड़ने का काम करती है और रूखी वाणी जुड़ों को भी अपने से अलग करती है। मैं ऐसी वाणी बोलूँ कि शताधिक लोग मुझसे जुड़ते चले जायें। मुझे कोई कष्ट हो, तो सैकड़ों लोग मुझे सहायता और अपना प्यार देने के लिए उमड़ पड़ें। मीठी वाणी से मेरा दूसरों से जो सम्बन्ध स्थापित हो, उसके कारण दूसरों पर भी कोई कष्ट आये, तो मैं उनकी सहायता के लिए दौड़ा चला जाऊँ। किन्तु वाणी में केवल माधुर्य का गुण होना ही पर्याप्त नहीं है, उसमें वर्चस् भी होना चाहिए। अतः वक्ता अपनी वाणी को सम्बोधन करके कह रहा है कि हे मेरी मधुर वाणी! वर्चस् के साथ तू मेरे प्रति उदित हो। वर्चस् का अर्थ है तेजस प्रभाव। बोली हुई वाणी का श्रोताओं पर चुम्बकीय तैजस प्रभाव होना चाहिए। उससे पापियों का पाप, हिंसकों की हिंसा, अकर्मण्यों की उदासीनता, आतंकवादियों का आतंक दूर होने चाहिएँ। वाणी में बिजली जैसी शक्ति होनी चाहिए, वज्र जैसी चोट होनी चाहिए, दिल दहला देनेवाली ओजस्विता होनी चाहिए। तभी वक्ता श्रोताओं को उद्बोधन दे सकेगा, अकर्मण्यों को कर्मण्य बना सकेगा।

–शेष पृष्ठ सं. 14 पर

thearyasamaj.org

गतांक से आगे–

दयानन्द दिग्विजयम्

लेखकः आचार्य मेधाव्रत

एकादशः सर्गः

इतो निलीनो नृपरामसिंहः प्रसिद्धशास्त्रार्थरणप्रबन्धे।
चमूपतिं लक्ष्मणनाथधीरं शैवेषु वीरं विदधे जयेच्छुः॥ 99॥

इधर जयपुर में महाराजा रामसिंह विख्यात शास्त्रार्थ–समर के प्रबन्ध में लगे थे। जय की कामना से शैवों में अग्रगण्य विद्वान् लक्ष्मणनाथ को महाराजा ने शास्त्रार्थ–युद्ध का सेनापति बनाया था॥ 99॥

बक्षीरामकनीरामौ बुधावास्तां सहोदरौ।
शैवशास्त्रार्थसंभागरसभायाः सुप्रबन्धकौ॥ 100॥

बक्षीराम व्यास और कनीराम व्यास दोनों सगे भाई थे। राजा ने इन्हीं दोनों को वैष्णवों के साथ होनेवाली शास्त्रार्थ–सभा की तैयारी के लिये व्यवस्थापक नियुक्त किया था॥ 100॥

पण्डितौरादिसंवादे स्वामिनो बुद्धिवैभवम्।
विद्यायाः विपुलं वीर्यं ताभ्यामासीत्परीक्षितम्॥ 101॥

पण्डितों के साथ पहले जो स्वामीजी की बातचीत हुई थी, इससे इन्होंने स्वामीजी के बुद्धिवैभव और विद्याचातुर्य की अच्छी परीक्षा कर ली थी॥ 101॥

शैववैष्णवशास्त्रार्थप्रबलायोधने मुनिः।
सेनानीः सत्यसंनद्धो विदधे शैवसूरिभिः॥ 102॥

इसलिये इन दोनों व्यवस्थापकों ने तथा शैव विद्वानों ने शैवों और वैष्णवों के प्रबल शास्त्रार्थ–संग्राम में सत्यकवचधारी दयानन्दजी को सेनापति पद पर नियुक्त किया॥ 102॥

अनीकिनाशो निरपेक्षवृत्तिः संख्ये प्रवृत्ते समरानुरागी।
स्वराष्ट्रसंबद्धसुराष्ट्रपक्षं यथावलम्बेत नयेषु दक्षः॥ 103॥
शैवं तथा वैष्णवसम्प्रदायाद् वरं समालम्ब्य मतं मुनीन्द्रः।
चक्रांकिताचार्यचयेन चर्चारणाय सज्जो रसतः श्रुतिज्ञः॥ 104॥

जैसे नीतिचतुर, निपेक्षवृत्ति, युद्धरसिक, सेनानायक युद्ध प्रारम्भ होने पर अपने राष्ट्र से सम्बद्ध दूसरे उत्तम राष्ट्रों का पक्ष ग्रहण करता है, वैसे ही, वेदवेत्ता दयानन्द वैष्णव सम्प्रदाय से शैवमत को कुछ श्रेष्ठ मानकर रसपूर्वक चक्रांकित आचार्यों के साथ शास्त्रार्थ के लिये सज्ज हो गये॥ 103–104॥

thearyasamaj.org

सुदर्शनाचार्यमुखा विपक्षे बुधा हरिश्चन्द्रनिभा व्यराजन्।
शास्त्रार्थयुद्धैकरसाः समर्थास्स्वपक्षरक्षाहितदक्षचित्ताः॥ 105॥

विरुद्ध पक्ष में पं0 सुदर्शनाचार्य और पं0 हरिश्चन्द्र जैसे विद्वान् थे, जो शास्त्रार्थ युद्ध-कला में अति प्रवीण तथा अपने पक्ष-समर्थन में महासमर्थ थे॥ 105॥

वेदानुकूलं मतमस्मदीयं विष्णोः पदं तत्परमं प्रसिद्धम्।
पश्यन्ति नित्यं दिवि सूरयस्ते प्रमाणमत्र श्रुतिरेव साक्षात्॥ 106॥
अपक्कजीवो न तदश्नुति पदं कृशानुतापांकितविग्रहः परम्।
अतप्ततन्वादिपदप्रकाशितं प्रकाशते मन्त्रयुगं श्रुतेर्वरम्॥ 107॥

वैष्णवों ने अपने पक्ष-समर्थन में कहा कि-हमारा मत वेदानुकूल है। इस में ''तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः, दिवीव चक्षुराततम्'' इत्यादि श्रुति प्रमाणभूत है; तथा अपक्क जीव उस परमपद को नहीं पा सकता है, इसलिये अग्नि से शरीर को शंखचक्रादि द्वारा तप्त करना चाहिये। इस के प्रतिपादन में निम्नलिखित श्रुति प्रमाण है-''अतप्ततन् र्न तदामोऽश्नुते'' ''तपोष्पवित्रं विततं दिवस्पते'' इत्यादि॥ 106-107॥

इति प्रतिज्ञां प्रविधाय वैष्णवं मतं प्रतिष्ठाप्य विवादसंगरे।
समग्रशैवाग्रसरान् वितर्जितुं विरेजिरे वैष्णवपण्डितेश्वराः॥ 108॥

इस प्रकार वैष्णव पण्डित प्रवरों ने प्रतिज्ञा द्वारा वैष्णव मत की स्थापना करते हुए शैवों के कुल पण्डित मण्डल को परास्त करने के लिये शास्त्रार्थ में प्रतिपक्षियों को तर्जना करना शुरु किया॥ 108॥

अगाधपाण्डित्यपयोनिधिस्तदा मुदा दयानन्दयतिर्व्रतीश्वरः।
शिवंकरः शैवनृणां सभारणे समुद्यते वैष्णवमार्गखण्डने॥ 109॥

तब उस समय अगाध पाण्डित्य के महासागर व्रतीश्वर दयानन्द यतिराज आनन्दपूर्वक सभा-संग्राम में शैवभक्तों का कल्याण चाहते हुए वैष्णवमत का इस प्रकार खण्डन करने लगे॥ 109॥

श्रुते र्विरुद्धं भवतां मतं तत् पुष्णाति पक्षं नहि मन्त्र एषः।
विष्णोः पदं दिव्यदृशः समाधौ पश्यन्ति दिव्यं न तु वैष्णवास्तत्॥ 110॥

आपका मत वेदविरुद्ध है। 'तद्विष्णोः' यह मंत्र आपके मत की पुष्टि नहीं करता है। ज्ञानी योगीजन सर्वव्यापक परमात्मा के अलौकिक पद को ज्ञानचक्षु से समाधि में देखते हैं। आप वैष्णव लोग तो विष्णु का दर्शन वैकुण्ठ या गोलोक में मानते हैं जो मिथ्या है॥ 110॥

अष्टांगयोगाचरणैरशुद्धेः क्षयं विधायात्मरतिप्रसन्नाः।
ज्ञानप्रदीप्त्या परमात्मविष्णोर्ज्ञातुं स्वरूपं प्रभवन्ति सन्तः॥ 111॥

अष्टांग योग का पालन करने से मन की अशुद्धियों का नाश करके आत्मानन्द से मस्त योगी सत्पुरुष उत्तरोत्तर ज्ञान की वृद्धि से सर्वव्यापक विष्णु परमात्मा का स्वरूप जानने के लिये शक्तिमान् होते

thearyasamaj.org

हैं॥ 111॥

शंखचक्रगदापदमैः संतप्तैरनले वपुः।
अंकयित्वा प्रभुप्राप्तिः कथं स्यादात्मनामहो॥ 112॥

शंख, चक्र, गदा और पदमों के आकार के बने हुए ताम्बे के पदार्थों को अग्नि में तपाकर शरीर को दाग देने से जीवात्मा परमात्मा की प्राप्ति कैसे कर सकता है॥ 112॥

मालातिलकसंज्ञानां धारणैः केवलं जपैः।
लभ्येत यदि वैकुण्ठः सत्यादिभिरलं व्रतैः॥ 113॥

माला, तिलक और नाम के धारण करने से एवं केवल जप से यदि विष्णु की प्राप्ति हो, तो सत्य, अहिंसा आदि व्रतों और अनुष्ठानों की क्या आवश्यकता है॥ 113॥

अतप्ततन्वादिपवित्रमंत्रसत्यार्थविज्ञानपराङ्मुखैस्तैः।
सद्ब्रह्मचर्यादितपांसि हित्वा तापस्तनौ संविहितो विमुक्त्यै॥ 114॥

'अतप्तनूः' आदि पवित्र मंत्रों के सत्यार्थ के विज्ञान से पराङ्मुख होकर, ब्रह्मचर्यादि तपों को त्यागकर मुक्ति के लिये शरीर पर दागने का विधान शास्त्रविरुद्ध है। शास्त्र में तो 'सत्यं तपः 'ऋतं तपः' आदि कहा है। पवित्र आचरण द्वारा ही जीवात्मा शम, दम, तितिक्षा, उपरति आदि मोक्ष-साधनों से अपने को पकाकर मुक्ति के योग्य होता है॥ 114॥

इत्थं मुनिर्वैष्णवसम्प्रदायग्रन्थेभ्य उद्धृत्य तदीयलीलाम्।
आलोचमालोचममून्त्सल्लज्जान् व्यधात्परास्तान् विदुषोऽपि मूकान्॥ 115॥

मुनिवर दयानन्द ने इस प्रकार वैष्णव संप्रदाय के ग्रन्थों में से अनेक उद्धरणों द्वारा उनकी लीलाओं की कड़ी आलोचना की और वैष्णव विद्वानों को हरा कर मूक कर दिया॥ 115॥

शैवानां हृदयाम्भोधिः प्रहर्षेन्दुप्रवर्द्धितः।
मर्यादां लंघयांचक्रे वैष्णवानां पराजयात्॥ 116॥

वैष्णवों की हार से शैवों का हृदय-सागर आनन्दमयी चन्द्र से उमड़कर मर्यादा को लांघ गया॥ 116॥

पौराः प्रभावितास्तेषां विजयेन द्रुतं तदा।
प्रक्रान्ता भवितुं शैवा रामसिंहोऽपि भूपतिः॥ 117॥

शैवों के विजय से प्रभावित होकर जनता जल्दी-जल्दी शैवमत ग्रहण करने लगी। महाराजा रामसिंह ने भी शैवमत की दीक्षा ली॥ 118॥

कण्ठं न केवलं माला रुद्राक्षाणां ततो नृणाम्।
दीक्षितानामलंचक्रु र्भूपानेकपवाजिनाम्॥ 118॥

रुद्राक्षमाला ने केवल दीक्षित मनुष्यों के ही कंठों को विभूषित नहीं किया, किन्तु राजा के हाथी

thearyasamaj.org

और घोड़ों के कण्ठों को भी सजा दिया॥ 118॥

वैष्णवोत्तमदिङ्नागान् वादयुद्धे विजित्य तान्।
यतिचन्द्रहरेः कीर्तिः कौमुदीव ततावनौ॥ 119॥

युद्ध में वैष्णवों के उत्तम पण्डितरूपी गजराजों को हरा देने से संन्यासी दयानन्दरूपी सिंह की कीर्त्तिचन्द्रिका भूमण्डल में फैल गई॥ 119॥

तद्राज्यमण्डलाधीशा भक्ता भूत्वा महात्मनः।
न्यमन्त्रयन्त मन्त्रज्ञं ज्ञानामृतपिपासवः॥ 120॥

जयपुर राज्य के मण्डलेश्वर राजा भी स्वामीजी के भक्त बन गये और ज्ञानामृत के पिपासु बनकर इन लोगों ने मंत्रद्रष्टा दयानन्द को अपने-अपने राज्य में पधारने का निमंत्रण दिया॥ 120॥

धर्मज्ञानसुधामेवं पाययन् क्षत्रियोत्तमान्।
इन्द्रसिंहादिराजन्यान् विनेयान् विदधौ मुनिः॥ 121॥

स्वामीजी ने श्रेष्ठ क्षत्रियों को धर्मज्ञान का अमृतपान कराया, जिससे इन्द्रसिंह आदि क्षत्रियवर इनके शिष्य हो गये॥ 121॥

स सार्द्धाश्चतुरो मासान् नीत्वा जयपुरे यतिः।
कृष्णदुर्गं ययौ यस्मिन् पृथ्वीसिंह महीपतिः॥ 122॥

साढ़े चार महीने जयपुर में व्यतीत करके यतिवर किशनगढ़ राज्य में गये। यहाँ उस समय पृथिवीसिंह नामक राजा राज्य करते थे॥ 122॥

निभाल्य तं वल्लभसम्प्रदाये विराजमानं बुधराजमान्यः।
भाले च पुण्ड्रं नृपपण्डितानामखण्डयत्पण्डितताां स शास्त्रे॥ 123॥

विद्वानों और राजाओं के वन्दनीय स्वामीजी ने वहाँ के राजा को वल्लभ संप्रदायी जानकर और राजपण्डित श्री विटठल और देवदत्त के ललाट पर पुण्ड्र देखकर उनके सिद्धान्तों का खण्डन किया॥ 123॥

अन्यथा ग्राहितो राजा पण्डितै र्निन्दया मुनेः।
आदिष्टवानमुं राष्ट्राद् रुष्टो गन्तुं बहिर्द्रतम्॥ 124॥

पण्डितों ने स्वामीजी के सम्बन्ध में राजा के मन में खूब खराब भावना भर दी। जिससे क्रुद्ध होकर राजा ने जल्दी इन्हें राजधानी से चले जाने की आज्ञा दी॥ 124॥

अवमत्य शासनं तन्नृपस्य योगी जगाद मुक्तभयः।
उत्थापयितुममुष्मात् स्थानान्मां कः प्रभवति नरः॥ 125॥

यह निर्भय योगी राजा के शासन को तिरस्कार की दृष्टि से देखकर बोला, "देखूं भला मुझे यहाँ से कौन उठाता है"? ॥ 125॥

शेष अगले अंक में

thearyasamaj.org

गतांक से आगे–

योगेश्वर कृष्ण

अश्वमेध

पाण्डव–साम्राज्य की पुनः स्थापना

लेखकः पं. चमूपति

इस चेतावनी का अर्थ स्पष्ट है। अश्वमेध वस्तुतः राजसूय के समय की गई भूलों का प्रतिशोध था। उस समय कृष्ण को अर्घ्य दिया जाना राजनैतिक दृष्टि से उचित न था। कृष्ण एक तो स्वयं राजा न था; राजकुल का अवश्य था और अपनी नीतिनिपुणता के कारण कई राज्यों को अपनी अंगुलियों पर नचा रहा था। उसके प्रचलित किये इस सिद्धान्त ने कि राजा कोई दैवशक्ति नहीं, यदिवह अनीति करे तो दण्डनीय है, यहाँ तक कि आवश्यकता पड़ने पर उसका वध भी किया जा सकता है, तात्कालिक राजनीति में क्रान्ति पैदा कर दी थी। कंस को उसने स्वयं मार डाला था। जरासन्ध का वध उसने भीम के हाथों करा दिया था। दुर्योधन का साथ त्याग देने का उपदेश पहले तो विदुर ने द्यूत खेले जाने से पूर्व धृतराष्ट्र को अपनी सभा में दिया, फिर श्री कृष्ण ने भी दूतकर्म करते–करते उसकी दुष्टता का और उपाय न देख उसे कैद करके पाण्डवों के हवाले कर देने का प्रस्ताव स्वयं कौरवों की सभा में उपस्थित कर दिया। इसमें श्री कृष्ण ने उदाहरण भी कंस का सिर स्वयं उतार देने का दिया। युद्ध के बीच में भी जब भीष्म पर श्री कृष्ण ने स्वयं हथियार उठाया और उसने शस्त्र रख दिये तो कृष्ण ने उसे हठी राजा के हठ का सहायक होने का दोष दिया। भीष्म ने इस सहायता में यह हेतु बताया कि राजा ''परम दैवत'' है, तो कृष्ण ने कंस के वध की ओर संकेत कर कहा कि वह भी तो हमारा परम देव था। इन घटनाओं में से कुछ राजसूय से पूर्व की और कुछ उसके पश्चात् की हैं। इनका एकत्र वर्णन करने से हमारा अभिप्राय यह दिखाना है कि श्रीकृष्ण का यह क्रान्तिकर सिद्धान्त जहाँ धीरे–धीरे विदुर जैसे नीतिज्ञों के हृदय में घर करता जा रहा था, वहाँ कृष्ण स्वयं उसे क्रियात्मक रूप देते चले जा रहे थे। युद्ध के क्षेत्र में भूरिश्रवा की भुजा अर्जुन के तीर से कट जाने पर भूरिश्रवा का यह कहना कि वृष्णि व्रात्य हैं, अर्थात् (पुराने राजाओं द्वारा) बहिष्कृत, इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि उस समय के राजवंश श्री कृष्ण के राजनैतिक विचार तथा व्यवहार से अत्यन्त असन्तुष्ट थे। युधिष्ठिर के राजसूय में इतने मुकुटधारी नरेशों के होते हुए एक ''अराजा'' ही को नहीं, किन्तु राजद्रोही क्रांतिकारी कृष्ण को अर्घ्य दिया जाना उन्हें क्योंकर सह्य हो सकता था? शिशुपाल तो उस व्यापी असन्तोष का केवल प्रत्यक्ष चिन्ह–मात्र ही था, जो उस समय के नरेन्द्र–मण्डल में अन्दर–अन्दर काम कर रहा था।

thearyasamaj.org

दुर्योधन ने युधिष्ठिर की सभा से लौटते हुए जहाँ चचेरे भाइयों की इतनी बढ़ी हुई समृद्धि और अलौकिक शान-बान को देखकर अपनी पुरानी ईर्ष्या का प्रकाश किया, वहाँ यह आशंका भी प्रकट की कि यदि इस राजघातक प्रवृत्ति का प्रतिकार न हुआ तो सभी राजाओं का वही हाल होगा जो शिशुपाल का हुआ है। शिशुपाल के वध ने वस्तुतः राजाओं के हृदयों में एक सनसनी-सी पैदा कर दी थी। शकुनि ने दुर्योधन से कहा भी कि आपकी सहायता पर बाल्हीक, जयद्रथ, शल्य आदि अनेक राजा हैं। जुआ तो एक स्वाँग था। वास्तव में पाण्डव-साम्राज्य स्थापित होते ही अपने विनाश के बीज अपने साथ लाया था। राजाओं के अपमान ने विद्रोह के सामान सहज ही में पैदा कर दिये थे। पाण्डवों का तेरह वर्ष का वनवास उस अपमान का कठोर प्रायश्चित था और महाभारत का युद्ध उस अनीति का घोर परिणाम।

इन्हीं बातों को लक्ष्य में रख अश्वमेध करते समय प्रथम तो अर्जुन ही को सावधान किया गया कि वह राजाओं का वध न करे। फिर युधिष्ठिर को श्री कृष्ण ही की जबानी चेतावनी मिली कि यज्ञ में उपस्थित होनेवालों की मान-मर्यादा का विशेष ध्यान रखा जाय और शिशुपाल के वध जैसा कोई उपद्रव फिर न होने दिया जाय।

वास्तव में राजाओं में आई बुराइयों का संशोधन तो महाभारत के युद्ध ने ही पर्याप्त मात्रा में कर दिया था। सिंहासन उलट-पलट गए थे। राज्य-पद्धतियों की काया-पलट हो गई थी। इस समय भड़कती आग पर पानी डालने की आवश्यकता थी और वह पानी इन सावधानताओं द्वारा यथेष्ट मात्रा में डाल दिया गया। क्रांतियों का तात्कालिक अन्त तो उनके उद्देश्य के सोलहों आने अनुकूल नहीं होता। हाँ, उनका प्रेरक भाव, उनके मूल में काम कर रहा नैतिक-सदाचारिक-उद्देश्य बहुत अंशों में सफल हो जाता है। क्रान्ति कुरीतियों की प्रतिक्रिया होती है। यदि कुरीतियों का नाश हो जाय तो समझो, क्रान्ति सफल है।

अश्वमेध की दक्षिणा में युधिष्ठिर ने सारा राज्य ही ब्राह्मणों को दे दिया। ऋत्विजों ने वह राज्य फिर लौटा दिया। इस क्रिया का अर्थ यह था कि युधिष्ठिर का साम्राज्य ब्राह्मणों की देन है। ब्राह्मण 'तपस्वी पण्डितों' को कहते थे। यह संज्ञा उन ज्ञानियों की होती थी जो विद्या के संसार के तो सम्राट् थे ही, फिर उनका आर्थिक जीवन भी स्वतः अंगीकृत निर्धनता का होता था। ब्राह्मण, प्रजा की आवाज ही नहीं, उनका भावना-भावित हृदय भी थे। युधिष्ठिर ने उनके दान से, भिक्षा-दान से, सम्राट् हो अपने-आपको उन्हीं का ऋणी क्या बनाया, दूसरे शब्दों में प्रजा के हृदयों की भावनाओं का अमानतदार बना, उनकी इच्छाओं के अनुकूल आचरण करने की प्रतिज्ञा की। साम्राज्य प्रजा की अमानत थी।

इसके पश्चात् अन्य बहुमूल्य दक्षिणाएँ ऋत्विग्वर्ग की भेंट की गईं। व्यास यज्ञ के ब्रह्मा थे। उन्होंने अपनी भेंट कुन्ती को दे दी। पाण्डु व्यास के वीर्य से विचित्रवीर्य का क्षेत्रज्ञ था। इस सम्बन्ध से कुन्ती इसकी पुत्रवधू थी। इनका अपनी पुत्रवधू को युधिष्ठिर की दी हुई दक्षिणा अर्पण करना भारतीय

thearyasamaj.org

कुल-मर्यादा-परम्परागत शील का एक दिव्य दृश्य था। दक्षिणाएँ उलट-पलटकर फिर-फिर आ वहीं रही थीं, परन्तु प्रत्येक उलट-फेर से उनकी शोभा-भावुकता की मंडी में उनका भाव-द्विगुणित-त्रिगुणित होता जा रहा था।

युधिष्ठिर के राजसूय ने सम्पूर्ण भारत के जिस साम्राज्य की आधारशिला एक नये रचे नगर इन्द्रप्रस्थ के उथले तल पर रख झट उस पर कुदाल का प्रहार भी साथ-साथ कर दिया था, उसे भारतभूमि की प्राचीन राजधानी हस्तिनापुर की युग-युगान्तरों की कोख की अथाह गहराइयों में फिर से स्थापित करने और प्रजाओं तथा राजाओं-दोनों की प्रीति की दृढ़ चट्टान पर आगे के लिए अचल रूप से सुरक्षित कर देने के लिए अश्वमेध का समारम्भ हुआ। अब के सारा नरेन्द्र-मण्डल प्रफुल्लवदन हो गया। द्वेष तथा वैमनस्य का कोई स्थान ही न था। पुराने साम्राज्यों के जराजीर्ण शरीरों का कायाकल्प हुआ। नये साम्राज्य की स्थापना नई उमंगों, नई आशाओं, नये संकल्पों से की गई। श्री कृष्ण को अब के अर्घ्य नहीं मिला, परन्तु उनके जीवन का यह उद्देश्य कि सम्पूर्ण भारत का एक ऐसा साम्राज्य-सूत्र में गूँथा जाए, जिसमें प्रत्येक राष्ट्र अपनी आन्तरिक राजनीति में स्वतन्त्र हो, पूर्ण हो गया। विधाता की ओर से उन्हें यह दिव्य अर्घ्य मिला। उनके जीवन-भर का परिश्रम सफल हुआ। अब कोई जरासंध किसी कंस को यादवों के-से किसी संघ पर ठूँस न सकेगा। साम्राज्य की स्थापना तो श्री कृष्ण भारत के आर्थिक, राजनैतिक, आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक उत्कर्ष के लिए आवश्यक समझते थे, परन्तु उनके साम्राज्य का लक्ष्य तदन्तर्गत अवान्तर राष्ट्रों का उनकी अपनी आन्तरिक परम्परागत प्रवृत्तियों तथा शक्तियों के अनुसार विकास करना था, न कि एकरूपता के लोहे के साँचे में बन्द कर उनकी नैसर्गिक शक्तियों को निगृहीत तथा स्तब्ध कर देना। जरासन्ध भी सम्राट् था, युधिष्ठिर भी। परन्तु जरासन्ध का लक्ष्य तो सभी राष्ट्रों को एकसत्तात्मकता के डंडे से हाँकना था। इसके विपरीत युधिष्ठिर, या सच पूछिये तो श्री कृष्ण, प्रत्येक राष्ट्र को अपनी प्रतिभा का प्रकाश उसके अपने यहाँ की रीति-नीति के अनुसार पूर्ण स्वतन्त्रता से करने देना चाहते थे।

आज कोई कुन्ती के हृदय में घुसकर देखे। व्यास की दक्षिणा मानो उसके सारे जीवन की आशाओं का मूर्तरूप धारण कर सहसा उसकी झोली में आ पड़ी। बाल-काल में माता-पिता ने छोड़ दिया। यौवन में पति ने वनवास ले लिया। तदनन्तर पुत्रों की आपत्तियों की लपेट में वह स्वयं भी एक लम्बी आपत्तिका शिकार रही। तेरह वर्ष विदुर के घर मेहमान बनकर रहना पड़ा। इस वीरांगना के सन्देश ने ही अर्जुन के बाहुओं को बलवान् बनाया। आज उसे वह दिन प्राप्त हुआ जिसके लिए उसके अपने कथनानुसार एक क्षत्रिय माता पुत्रप्रसव की पीड़ा सहती है। उसकी कुक्षि सफल हुई। उसके रोम-रोम से अर्जुन के लिए फूट-फूटकर आशीर्वादों के स्रोत उमड़ रहे थे-हाँ, अर्जुन के लिए और उसके सारथि कृष्ण के लिए! ❁❁❁

thearyasamaj.org

वीर वैरागी

लेखकः– भाई परमानन्द

जब मुसलमानों के अत्याचारों से हिन्दु तंग आ चुके थे, और हिन्दुपति श्री गुरु तेग बहादुर जी अपना शीश धर्म पर बलिदान कर चुके थे, तब श्री गुरु गोविन्दसिंह जी कार्य क्षेत्र में अवतीर्ण हुए और मुहम्मदी सेनाओं तथा बादशाहों को वह नाकों चने चबाये कि उन्हें छटी का दूध याद आ गया। उन्हीं दिनों वैरागी बँदा भी समरभूमि में आ डटे, और नगर पर नगर मारते तथा मुसलमान राजाओं को उनकी बदमाशियों का फ़ल चखाते फिरते थे। गुरु गोविन्दसिंह जी तो परलोक गमन कर चुके थे; परन्तु वीरवर बन्दा ने उनकी मृत्यु के पश्चात् भी कमान संभाले रक्खी। यह फर्रुख सियर का काल था। उक्त बादशाह ने विचारा कि यदि इसी प्रकार से वीर वैरागी सिक्खों का संभाले रहा तो कुछ दिनों में ही इस्लामी साम्राज्य नष्ट भ्रष्ट हो जायगा; अतः यह भेद नीति का उपयोग करते हुए सिक्खों को वैरागी से पृथक् करने के उपाय सोचने लगा। एवं उसने यह प्रसिद्ध करना शुरू कर दिया कि यद्यपि गुरु गोविन्दसिंह जी गद्दी का क्रम बंद कर गये हैं तो भी बन्दा गुरु बनना चाहता है। अतः सिक्खों को उचित है कि उसका साथ न दें। श्री गुरु गोविन्दसिंह जी की धर्म पत्नियां उसके माया जाल में आ गईं और सिक्ख बन्दा बहादुर से पृथक् हो गये। उन दिनों सिक्खों तथा फर्रुखसियर का परस्पर निम्नलिखित सन्धि नियमों पर समझौता हुआ–

(1) सिक्ख बादशाही राज्य में कभी लूट खसोट नहीं करेंगे

(2) कोई सिक्ख वैरागी का साथ नहीं देगा।

(3) यदि कोई शत्रु लाहौर पर चढ़ाई करेगा, तो वे लाहौर के शासक की सहायता करेंगे।

1– कोई बादशाह सिक्खों की जागीर नहीं छीन सकेगा।

2 – किसी हिन्दु को बलात् धर्म च्युत करके मुसलमान् नहीं किया जायेगा।

3– कोई यवन किसी हिन्दु के समक्ष गो–वध नहीं करेगा।

उपरलिखित सन्धि नियमों की उपस्थिति में भी क्या यह बात निर्विवाद रूप से सिद्ध नहीं हुई कि हिन्दुओं को जबरदस्ती मुसलमान् बनाया जाता रहा।

गुरुओं, उनके सुपुत्रों, धर्म वीर हकीकतराय तथा अन्य हिन्दु शहीदों के उदाहरण एकत्रित करके पुस्तक के आकार को बढ़ाना हमें अभीष्ट नहीं है क्योंकि यह सारी कथायें सर्व साधारण को भली भांति ज्ञात हैं। उक्त सब गाथाओं से यह अच्छी तरह से प्रकट हो जाता है कि निःसन्देह उन सबको 'जन, जर, जमीन' के प्रलोभन दिये गये; परन्तु उन्होंने क्योंकि वैदिक धर्म को छोड़ना पसन्द न किया और समस्त सांसारिक प्रलोभनों को पांव से ठुकरा दिया, इस लिये तलवार के घाट उतार दिये गये। इन तमाम

thearyasamaj.org

उदाहरणों तथा प्रमाणों को पढ़कर भी क्या इस बात का निर्णय नहीं हुआ कि 'हिन्दुओं को तलवार के जोर से मुसलमान बनाया गया या 'जन, जर, जमीन' को लालच देकर?

दूर जाने की आवश्यकता नहीं। 1921 में दक्षिण भारत के मोपला विद्रोह में नराधम मोपलाओं ने खिलाफत आन्दोलन से उत्तेजित होकर ऊधम मचाया। और जहां सहस्रों धर्मप्रेमी हिन्दुओं का वध किया, उनकी सम्पत्तियों को लूटा, धर्म स्थानों को अपवित्र किया और विविध प्रकार के अत्याचार किये, वहां **लगभग 2500 हिन्दु स्त्रियों, पुरुषों को बलात् धर्मच्युत किया** जिनको कि श्रीमती आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा लाहौर ने फिर से वैदिक धर्म की शरण में ले लिया। हिन्दु जितने भी उक्त सभा के कृतज्ञ हों कम हों।

अन्तिम निवेदन

जहां तक हमारा विचार है कि स्यात् ही कोई ऐसा यवन बादशाह हुआ होगा, जिसने कि हिन्दुओं पर अत्याचार न किये हों, जिसने किसी न किसी उपाय से चाहे वह 'जन, जर, जमीन' की प्रलोभन हो चाहे 'तलवार का भय', हिन्दुओं को मुसलमान् न बनाया हो। ऐतिहासिक घटनाएँ इतनी अधिक हैं कि यदि केवल इसी विषय पर एक ग्रन्थ लिखा जाय तो सैंकड़ों सफों के आकार की आवश्यकता होगी; परन्तु हम विस्तार भय से यहीं पर बस किये देते हैं। यदि अवसर प्राप्त हुआ तो फिर कभी इस विषय का विस्तृत वर्णन करेंगे।

हमने ऐतिहासिक दृष्टान्तों का उल्लेख करके यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि कतिपय भारतवासी भाइयों का यह कहना कि हमारे पूर्वज इस्लाम के गुणों तथा सौन्दर्य पर मुग्ध होकर धर्मच्युत हुए थे नितान्त भ्रम मूलक है। वे बिचारे तो केवल 'जन, जर, जमीन' के लालच या तलवार के भय से यवन मण्डल में सम्मिलित किये गये थे।

इन हालात में आर्यों का कर्त्तव्य है कि वे अपने उन भाइयों की दशा पर दया करें, जो कि बलात् उनसे छीने गये थे, और उन्हें अपनी प्रेम मयी गोदी में लेने के लिये हर समय कटिबद्ध रहें।

इस्लाम के जो वृत्तान्त और इतिहास के जो दृष्टान्त इस पुस्तिका में लिखे गये हैं उन्हें पढ़कर भी क्या कोई आत्मविश्वासी तथा आत्माभिमानी हिन्दु, यवन बन सकता है? हम चाहते हैं कि आधुनिक भारतवासी मुसलमान् सज्जन अपने पूर्वजों पर किये गये अत्याचारों को स्मरण करके, ऐसे अत्याचारों और बुद्धि विरुद्ध ढकोसलों की शिक्षा देने वाले मानुषिक मजहब को बगैर झिझक परित्याग करके ईश्वरीय धर्म की गोद में आयें। अब वह जमाना गया जबकि आपके पूर्वजों की रत्ती भर भूल पर, उन्हें बिरादरियों से पृथक् कर दिया गया था। अब वैदिक धर्मियों ने अपने आपको समझ कर संसार भर के वास्ते खुला निमंत्रण दे दिया है कि वह मनुष्य स्थापित मजहबों के मायावी बहुरूपियापन को देखकर असत्यानुगामी न बनते हुए, पवित्र वैदिक धर्म की शरण में हर समय प्राप्त हो सकते हैं। कोई भी ऐसी

thearyasamaj.org

शक्ति नहीं जो उन्हें इस शुभ संकल्प से रोक सके।

अन्त में हम हिन्दुओं को बतला देना चाहते हैं कि भारतवर्ष के दासत्व को नाश करने, भारत माता को स्वराज्य दिलाने, हिन्दुओं तथा मुसलमानों का भेदभाव मिटा कर सच्चा ऐक्य स्थापित करने और वैदिक धर्म का डंका विश्व भर में बजाने का शुद्धि ही एकमात्र मार्ग है जिसे उन्होंने अपने तमाम मत भेदों को तिलांजलि देकर पूर्ण रूप से अपने हाथ में ले लिया है।

हमारा विश्वास है कि और दृढ़ विश्वास है कि यदि शुद्धि आन्दोलन कुछ वर्ष तक ही चलता रहा तो पांच छः करोड़ मुसलमानों को, जिनकी नसों नाड़ियों में राम और कृष्ण का पवित्र रक्त अभी तक जोश मारता है, परन्तु जो कई एक प्रकार की रुकावटों, बहकावटों और फुसलावटों के कारण सत्य मार्ग से दूर भटक रहे हैं, वैदिक धर्म की शरण में ले आना कोई कठिन काम नहीं होगा। हमारे मुसलमान मित्र, जो विरोध कर रहे हैं वह केवल चन्द रोज हैं। आरम्भ में जब किसी व्रण का आपरेशन किया जाय, तो रोगी चिल्लाया ही करता है; परन्तु क्या योग्य वैद्य को उसकी हाय वाय सुनकर अपना नश्तर ही पीछे खेंच लेना चाहिये? कदापि नहीं! कदापि नहीं!! अतः अपना काम करते जाओ। भारतीय हिन्दु शुद्धि सभा को धन जन से सहायता पहुँचाते रहो; यह विरोध, यह कोलाहल, यह 'मारे गये मारे गये' की आवाज स्वयमेव बन्द हो जायगी। और तमाम शोर मचाने वाले महानुभाव जो आजकल विरोधी बने फिरते हैं आप ही पवित्र वैदिक धर्म की गोद में आकर सुख और शान्ति का श्वांस लेंगे; क्योंकि वेद के शान्तिप्रद स्रोत को छोड़कर आत्मिक शान्ति कहीं और प्राप्त हो ही नहीं सकती इसलिये आओ **'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'** वेद के इस आदेशानुसार सारे संसार को आर्य बनाते हुए जगत् पिता से प्रार्थना करें कि हे जगदीश! हमें बल प्रदान करो ताकि हम स्वयं वेद मार्ग पर आरूढ़ होते हुए और मनुष्य स्थापित मजहबों की पोल खोलते हुए विश्व भर में तेरी आज्ञाओं का प्रचार कर सकें। ❁❁❁

पृष्ठ सं. 4 का शेष–

मैं यह भी चाहता हूँ कि मुझे चारों ओर से वायु घेर ले, प्राण सप्राण कर दे। मैं निश्चेष्टता त्यागकर सचेष्ट हो जाऊँ। प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान सबकी पूर्ण शक्तियाँ मेरे अन्दर आ जाएँ। प्राणायाम से मैं अपने मन और शरीर की आधि–व्याधियों को बाहर निकालकर निष्कल्मष हो जाऊँ। साथ ही कोई कारीगर जैसे किसी बेडौल वस्तु को गढ़–छीलकर आकर्षक बना देता है, वैसे ही ब्रह्माण्ड का शिल्पी जगदीश्वर मेरी अशोभनता, असुन्दरता और जर्जरता को मुझसे अलग करके मुझे सर्वांगसुन्दर और परिपुष्ट कर देवे। मैं त्वष्टा प्रभु की सर्वोत्तम कृति हूँ, उसी के अनुरूप मेरी सज्जा, सुन्दरता, परिपुष्टि और दर्शनीयता होनी चाहिए। मैं अपने अन्दर वाणी का माधुर्य, वाणी का तेज, प्राण की बलवत्ता और सब शक्तियों की परिपूर्णता तथा पुष्टि भर रहा हूँ। मैं स्वयं को महान् शिल्पी जगदीश्वर की सर्वोत्तम कृति सिद्ध कर रहा हूँ। ❁❁❁

thearyasamaj.org

सुख का सच्चा स्वरूप व उसकी प्राप्ति के उपाय

लेखकः आचार्य प्रद्युम्न

उपनिषद् का ऋषि कहता है–सत्य को प्राप्त करने के लिए विज्ञान चाहिए, विज्ञान की प्राप्ति होती है मति= मनन से, मनन तब होता है जब मननीय विषय में श्रद्धा हो, श्रद्धा श्रद्धेय विषय में निष्ठा (निश्चितरूपेण स्थिरता) से विकसित होती है, निष्ठा बनती है कृति से अर्थात् कर्मण्यता से (व्यायाम में निष्ठा उसी की होगी जो प्रतिदिन व्यायाम करेगा, अध्यात्म–मार्ग में भी उसी की निष्ठा होगी जो उस पर चलेगा) कर्म–उस काम को करने का सिलसिला तभी आगे बढ़ता है जब उससे सुख मिले।

अब हमें सुख का अन्वेषण करना चाहिए, सुख का मूलस्रोत अर्थात् उसका वास्तविक स्वरूप क्या है? तथा सुख प्राप्ति के उपाय क्या हैं? ये दो बातें एकदम से स्पष्ट हो जायें तो व्यक्ति का जीवनपथ अत्यन्त सरल हो जाए। जीवन में जितनी भी भ्रान्तियाँ, विसंगतियाँ, कष्ट–क्लेश–बाधायें, पीड़ायें, तनाव आदि दिखायी देते हैं, उनके मूल में प्रवेश करने का प्रयत्न किया जाए तो यही चीज उभर कर आएगी कि व्यक्ति को सुख के सच्चे स्वरूप तथा उसके स्रोत का ठीक ज्ञान न होने के कारण वह जहाँ भी हाथ डालता है या जो कुछ भी करता है, उसका परिणाम बनकर ये सब उपर्युक्त चीजें उसके हाथ में आ जाती हैं। वस्तुतः जैसा हम करते हैं वैसा हमें मिलता रहता है। यदि हमने अपने अज्ञान के कारण दुःखदायी वस्तु–व्यक्ति–विचार या क्रिया–कलाप को सुखदायी समझ लिया तो स्पष्ट है कि उस वस्तु–व्यक्ति–विचार या क्रिया–कलाप से सुख उत्पन्न नहीं हो सकता है। उन चीजों का जो स्वभाव है वही परिणाम उत्पन्न होगा। कोई विष को अमृत समझ कर पी जाए और विष अपना काम न करे–यह बात कम से कम इस विज्ञान प्रधान युग में गले उतरने वाली नहीं है। अग्नि को शीतल समझकर हाथ डाले और वह अपने दाह धर्म को छोड़ दे–यह असम्भव है। अज्ञान में कोई शराब को फलों का रस समझकर पी जाए और उसे नशा न हो क्या यह विश्वनीय तथ्य हो सकता है?

एक दूसरी बात भी है–बुरी चीजें तो विपरीत भावना के कारण सुपरिणाम नहीं ला सकती, किन्तु अच्छी चीजें तो विपरीत भावना के कारण अनिष्ट परिणाम ला सकती हैं–जैसे आत्महत्या करने के इच्छुक एक नवयुवक ने दुकानदार से तेज विष माँगा। दुकानदार ने उसके चेहरे की तरफ देखा और उसे ऐसा आभास हुआ कि यह मरने के लिये विष मांग रहा है। उसने उठाकर एक अच्छा टॉनिक नवयुवक के हाथ में दे दिया। नवयुवक ने अपने स्थान पर पहुँचकर उस दवा को पी लिया। दवा पीते ही उसके शरीर पर विष वाले समस्त लक्षण प्रकट होने लगे। रोगी को डाक्टरों के पास ले जाया गया। जाँच के बाद डाक्टर इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि इस व्यक्ति ने विष तो नहीं लिया, पर प्रभाव सब के सब विष वाले हैं और यदि यह एक घण्टा भी हॉस्पिटल न आता तो इसकी मृत्यु हो जाती। इस घटना से यही सिद्ध होता है कि मन ने अमृत को भी विष मान लिया है अतः वह विष बन गया।

कई बार यह देखने में आता है कि सर्वथा विषहीन सर्प के काटने पर भी व्यक्ति मर जाता है क्योंकि उसे विष की पूरी–पूरी शंका हो जाती है। यह शंका रूपी विष, अमृत को भी या जो विष नहीं है, उसे भी विष में बदल देता है। पर मन में इतना सामर्थ्य नहीं है कि वह अपने प्रबल आग्रह बल से विष को अमृत में बदल दे, यह नहीं हो सकता कि अपने मनोबल से बर्फ व अग्नि के शीत व ताप धर्म को रोक दे, शरीर पर उसका प्रभाव ही न होने

thearyasamaj.org

दे। यह तो सम्भव है कि मन के सहयोग से कुछ सीमा तक उससे अप्रभावित रह जाए। हानिरहित चीजें भी मन की विपरीत सोच से हानिकारक हो सकती हैं या लाभदायक चीजें हानि पहुँचाने वाली हो सकती हैं, पर हानिकारक चीजें विरुद्ध सोच से पूर्ण हानिरहित या लाभदायक नहीं बनायी जा सकतीं। कोई शराब पीता रहे, धूम्रपान करता रहे, ब्र ह्मचर्य का अत्यन्त नाश करता रहे और मन से निरन्तर यह सोचता रहे कि मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ, मेरे स्वास्थ्य में कोई भी किसी प्रकार की कमी नहीं आ रही–वह व्यक्ति कितना भी अपनी सोच को इस रूप में तीव्र से तीव्रतम बनाये रखे–इन विपरीत चीजों से होने वाली स्वास्थ्य की गिरावट को वह पूर्णरूप से रोक नहीं सकता, आंशिक रूप से भले ही मन की शक्ति से कुछ लाभ ले लेवे।

इन सभी कथनों का सार यही है कि मन की शक्ति और पदार्थ की शक्ति दोनों ही अपनी–अपनी जगह काम करती रहती हैं। सो दु:खदायी वस्तु, व्यक्ति, विचार या क्रियाकलाप को सुखदायी समझकर जो भी इनसे जुड़ेगा, उसे दु:ख उठाना नहीं पड़ेगा, वह इन चीजों से उत्पन्न होने वाले दु:ख से बच नहीं सकेगा। इस प्रकार सबसे पहले व्यक्ति अपने गहन अन्वेषण के द्वारा 'सुख का स्वरूप' तथा 'वह सुख कैसे मिलता है?' इन दो बातों का निर्धारण करे। इसी को शास्त्रीय भाषा में 'हान' व 'हानोपाय' नाम से भी कह देते हैं। 'सुख' व 'सुख के साधनों' की खोज के सिलसिले में यानि इनके शुद्धरूप को समझने के लिये ही 'दु:ख' व 'दु:ख के कारणों' को भी साथ में स्पष्टता से देखना होता है, जिनके लिए शास्त्र में 'हेय' व 'हेयहेतु' ये दो नाम दिए गए हैं। इस तरह कुल–मिलाकर इन चार बातों का बोध कराने के लिए ही सारे शास्त्र, समस्त ध्यानपद्धतियाँ, सारी मर्यादायें, सारी साधनायें, सब के सब प्रवचन व उपदेश प्रवृत्त हो रहे हैं। जो इन चारों को ठीक से जान लेता है उसे आर्यपुरुष, मुक्तपुरुष, महापुरुष, ज्ञानी, आरिफ, सन्त, भक्त, त्रिगुणातीत, स्थितप्रज्ञ, योगी, ऋषि, देव, मुनि, तत्त्ववेत्ता, दार्शनिक, विप्र, मनीषी, मनस्वी, धीर, महामना, उदार, कुशल, स्वराट्, संन्यासी, वेदान्ती, महात्मा, साधु, तपस्वी, स्वस्थ, शीलवान्, समाहित, प्रज्ञावान्, साक्षात्कृतधर्मा, मेधावी, वीर, महावीर, सिद्ध, ब्रह्मचारी, भगवान् इत्यादि विविध नामों से पुकारते हैं।

ज्ञानी पुरुषों का कहना है कि जैसे शरीर के प्रति पूर्ण जागरूक व्यक्ति को रोग व रोग के कारण तथा स्वास्थ्य व स्वास्थ्य के उपायों का ज्ञान रखना अत्यन्त आवश्यक होता है उसी प्रकार एक मनोवैज्ञानिक को जो अपने आन्तरिक जीवन को सुसम्पन्न रखना चाहता है, जो सर्वदा–सर्वत्र–सर्वथा अपने को प्रसन्न, शान्त, आनन्दित, तृप्त स्थिति में देखना चाहता है, जो मुक्तजीवन जीने का इच्छुक है, जो इस धरती पर भगवान् का वीर–योद्धा बनकर रहना चाहता है, जो अपने प्रियतम का सच्चाा सेवक कहलाना चाहता है, जो दीन–दुःखियों का सचमुच सहयोग करना चाहता है, एक शब्द में जो भागवत ज्ञान व भागवत शक्तियों के अनवरत प्रवाह या अजस्र स्रोत के रूप में अपने आपको देखने के लिये लालायित हो उठा है–ऐसी चाह वाले व्यक्ति को सुख व सुख के उपाय तथा दु:ख व दु:ख के कारणों की गहन मीमांसा, विवेचना, विश्लेषण व स्पष्ट बोध प्राप्त करना ही होगा। यदि इस मूल समस्या के समाधान में थोड़ी भी भूल–चूक हो जाती है, थोड़ी सी भी भ्रान्ति–संशय–अज्ञान शेष रह जाता है तो वह अज्ञान साधक को लक्ष्य से दूर ही ले जाता है। अत: इस प्राथमिक कार्य को सर्वाधिक महत्व देकर जो इस पर केन्द्रित हो जाते हैं–उनका मार्ग अत्यन्त सुगम हो जाता है।

हमारा ज्ञान (हमारा दर्शन) ही तो हमारे समस्त क्रियाकलाप का कारण होता है। यह ज्ञान जितना अधिक निर्मल होता जाएगा, उतना ही मनुष्य का कार्मिक जीवन भी शुद्ध होता जाएगा, ज्ञान व कर्म के शुद्ध होने से उपासना (मानसिक लगाव=आसक्ति) भी शुद्ध होती जाती है। तीनों ही एक दूसरे को शुद्ध–पवित्र व निर्मल

thearyasamaj.org

बनाते रहते हैं। इन तीनों की शुद्धि का सामूहिक परिणाम यह होता है कि ज्ञान सुस्थिर हो जाता है, एकरस हो जाता है, सहज हो जाता है। सुस्थिर ज्ञान वाले व्यक्ति को वेद व उपनिषद् में विज्ञानवान् कहा गया है। यही 'वैराग्य' है। यहाँ तक पहुँचने के लिए किये गये प्रयत्न अर्थात् मार्ग के श्रम का नाम 'अभ्यास' है। इस अभ्यास का ही दूसरा नाम तपस्या है, स्वयं से स्वयं को रोकते रहना भी यही है। ऐसा करते-करते स्थिर हो जाना और वहीं रुके रहना ही 'वैराग्य' है।

शरीर, वाणी और मन की मर्यादित व अमर्यादित, नियन्त्रित व अनियन्त्रित अवस्था पर हमारा सुख व दु:ख अवलम्बित है। सुख व दु:ख की परिभाषाएं देते हुए दो शब्दों का प्रयोग किया जाता है-अनुकूलवेदनीय सुख, प्रतिकूलवेदनीय दु:ख। व्यक्ति जब प्राकृतिक भोगों में अपना मन लगाता है तो इसी कारण से कि उन भोगों को भोगते हुए उसे अच्छा लगता है, उसके मन व इन्द्रियाँ अनुकूलता अनुभव करते हैं। दूसरी ओर संयम इसी कारण से नहीं कर पाता या नहीं करना चाहता कि वैसा करने में उसके मन व इन्द्रियों को प्रतिकूलता अनुभव होती है। एक व्यक्ति प्रतिदिन व्यायाम करता है-क्योंकि वह उसे अनुकूलता मानता है, दूसरी नहीं करता है, क्योंकि व्यायाम करना उसे कष्टदायक प्रतीत होता है, प्रतिकूल लगता है। जितने भी गलत काम कहे जाते हैं वे भी तभी किए जाते हैं जबकि उनमें सुख मिलता हुआ प्रतीत होता है। जहाँ भी रस (सुख) समाप्त हुआ-फिर वह चाहे उत्तम कार्य है या निकृष्ट-तुरन्त छूट जाता है। दूसरी तरफ जहाँ से भी रस (सुख) मिलना प्रारम्भ हुआ कि वह काम प्रारम्भ हो जाता है।

यहाँ एक बात विशेष रूप से विचारणीय है कि मनुष्य ही नहीं, सृष्टि का कोई भी प्राणी दु:ख, प्रतिकूलता, बाधा, कष्ट, क्लेश नहीं चाहता, फिर ये आ कहाँ से जाते हैं? पहले सुख चाहता है, फिर अपने ज्ञान के अनुसार कर्म करता है तदनन्तर कहीं जाकर फल मिलता है। जब सुख ही चाहता है तो उसकी इस चाहत के अनुरूप किये गये कर्मों के फल के रूप में दु:ख कहाँ से मिल जाता है? वास्तव में इस पहेली का हल ढूंढ़ना ही पड़ेगा। जो इस पहेली को सुलझा लेते हैं, वे ही सुलझे हुए कहे जाते हैं, समाज उन्हें ज्ञानी के नाम से पुकारने लगता है। अन्यथा सारा संसार इन सुख व दु:ख के दो झूलों में झूलता रहता है। ऐसा दिखाई देता है कि इच्छा करते हैं सुख की और मिल जाता है दु:ख। तथ्य इससे विपरीत है-जिन वस्तु, व्यक्ति, विचार या क्रियाकलाप से सुख लेने की इच्छा से जब कोई व्यक्ति उनके साथ सम्बद्ध हुआ तो उसी समय बेशक अनजाने में ही, पर उसने दु:ख के बीज भी बो दिए थे। कार्यकारणभाव के शाश्वत नियम से फिर कौन बच सकता है? जाने में या अनजाने में दु:ख के बीज बोकर अब वह चाहे कि दु:ख न मिले-ऐसा नहीं हो सकता। ये बीज शरीर (इन्द्रियों), वाणी व मन के द्वारा बोए जाते हैं। इसी समय जब कि कर्मों के बीज बोए जा रहे होते हैं, व्यक्ति को असाधारण रूप से सजग व जागरूक रहने की आवश्यकता होती है कि दु:ख का कोई एक भी बीज न बोया जाए।

जब कोई व्यक्ति अपने शरीर से शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध आदि इन्द्रिय भोगों का रस ले रहा है तो उसी समय परिणाम में प्राप्त होने वाले इन्द्रिय-दौर्बल्य व इन्द्रियों की अतृप्ति रूपी दु:ख के बीजों को भी उसने बो दिया है। अब जो यह उसे भोगों के रस का परिणाम मिल रहा है, उसके शरीर मन व प्राण विकृत हो गये हैं, शरीर व मानस रोगों ने उसे धर दबोचा है, इन्द्रियों की भोग भोगने की लालसा तो तीव्र हो गयी है, पर उनका सामर्थ्य क्षीण हो गया है, उस अतृप्ति के कारण सदा सर्वदा अन्दर ही अन्दर वह जलता रहता है। क्या पहले ही उसने इन सब चीजों की इच्छा नहीं कर ली थी? इसलिए अब जो प्राप्त हो रहा है उसे किसी भी तरह अनहोनी

thearyasamaj.org

या अनचाहा नहीं का जा सकता।

जिसकी आँखें दूरस्थ परिणाम को अविलम्ब देख लेती हैं वह कैसे अपने मन, प्राण व इन्द्रियों को इस आग की भेंट चढ़ा सकता है? जिसका निश्चय और निर्णय एकदम से स्पष्ट हो गया है कि इस प्रकृति से, माया से, संसार से, इन्द्रिय भोगों से प्राप्त होने वाला सुख ऐसा ही है जैसे कि किसी अत्यन्त स्वादु भोजन में कोई तीव्र विष ऐसी कुशलता से मिला दिया गया हो कि खाने वाले को खाते समय बेशक उसकी जिह्वा कितनी भी रस-पारखी हो, पता नहीं चलेगा। केवल मात्र ऐसी समझ रखने वाला प्रज्ञावान् पुरुष ही भोगों के सुख का त्याग कर सकता है। यदि व्यक्ति का विवेक इतना निर्मल नहीं होता है और भोगकाल में उसे किंचित् भी किसी प्रकार का सुख दिखायी दे रहा है तो कैसे वह उस सुख को छोड़ सकता है? और जब इस सुख को नहीं छोड़ सकता तो कैसे दु:ख से बच सकता है?

उपनिषद् का ऋषि दूसरे शब्दों में यही समझाता है कि भूमा में ही सुख है, अल्प में सुख नहीं है। मनुष्य को भूमा की जिज्ञासा तथा खोज करनी चाहिए। ऋषि भूमा व अल्प के भेद को प्रकट करते हुए साधक को एक विशेष उपहार देते हैं कि जो भी अमृत है, क्षीण न होने वाला है, एकरस रहने वाला है वह भूमा है तथा जो कुछ मर्त्य है, सान्त है, नाश को प्राप्त होने वाला है वह अल्प है। मनुष्य का मन भूमा को चाहता है तो भूमा मिलता है और अल्प को चाहता है और तत्फलस्वरूप आने वाले दु:खों से भी बच जाए। भूमा और अल्प, अनन्त और सान्त का भेद जिसके सामने प्रकट हो जाता है या हो गया है वह क्यों अपना मन भूमा को छोड़कर अल्प में लगाना चाहिए।?

जब मनुष्य अपने से बाहर किसी भी जड़ या चेतन (ईश्वर पर लागू नहीं) वस्तु को चाहता है, अपने को छोड़कर अपने से बाहर किसी वस्तु को देखता है, सूंघता है, चखता है, स्पर्श करता है, सुनता है, इसी प्रकार अपने को छोड़कर किसी अन्य का समर्थन, किसी अन्य की प्रसन्नता तथा बाह्य धन-वैभव, पद-प्रतिष्ठा की इच्छा करता है तो वह अल्प की ही इच्छा कर रहा होता है-बेशक फिर वह इन चीजों को बहुत मात्रा में ही चाहे। इन चीजों की माँग जितनी तीव्र व अधिक होगी उसी के अनुपात में उसकी 'अल्प' की चाह का मूल्यांकन होगा। दूसरी तरफ अपने को छोड़कर अपने से बाहर किसी अन्य वस्तु या व्यक्ति की इच्छा नहीं करता, अन्य को न देखना, न सुनना, न स्पर्श करना, न चखना, न सूंघना, न किसी अन्य के साथ बात करना चाहता है, न ही धन-ऐश्वर्य, पद-प्रतिष्ठा की इच्छा करता है। जब केवल मात्र अपने अन्दर परमात्मा को चाहता है तो वह 'भूमा' को चाह रहा होता है। इस खोज में एक बात उभर कर आती है कि व्यक्ति के आन्तरिक लगाव के आधार पर यह निर्धारण होता है वह 'भूमा' का इच्छुक है या अल्प का। दूसरे शब्दों में प्रकृति का इच्छुक है या पुरुष का, माया का या मायापति का, नश्वर का या शाश्वत का, बन्धन का इच्छुक है या मुक्ति का, मिथ्या की चाह रखता है या सत्य की, इन्द्रियों के सुख का प्यासा है या धर्म का, सान्त के लिए लालायित है या अनन्त के लिए, भूतों को चाहता है या देव को।

यदि इस सान्त नाम व रूप में व्यक्ति का लगाव नहीं है, आसक्ति नहीं है, उस तरफ खिंचाव नहीं है तो वह संसार को देखता हुआ भी नहीं देख रहा होता, संसार के साथ किसी भी रूप में जुड़कर भी जुड़ा हुआ नहीं होता। ऐसे व्यक्ति को ही निर्लिप्त, मुक्त, आत्मरति, आत्मक्रीड, आत्माराम, आत्मनिष्ठ, स्थितप्रज्ञ, योगी, यति, तत्त्ववेत्ता, ज्ञानी, प्रकाशपुत्र, संशितव्रत, सच्चा ब्रह्मचारी आदि-आदि विविध नामों से पुकारते हैं। **ऐसे व्यक्ति के जीवन का सौन्दर्य अद्‌भुत और बहुत ही निराला होता है, पूर्ण सहज होता है, शान्त होता है, उसमें किसी भी प्रकार के तनाव आदि का कोई स्थान नहीं होता। इसी ज्ञानमय स्थिति का नाम 'वैराग्य' है। इस स्थिति को प्राप्त कराने वाले सारे आन्तरिक व बाह्य प्रयत्नों का नाम 'अभ्यास' है।** ❀❀❀

thearyasamaj.org

पण्डित वर्ग

–श्रीबुद्धगीता से साभार

एक दिन सभा लगा हुई थी, भगवान बुद्ध आसन पर विराजमान थे। उस समय एक ब्राह्मण ने नम्रतापूर्वक इस प्रकार निवेदन किया–

''हे पापों के नाश करनेवाले यतिवर, आप हम सबको पण्डित तथा ज्ञानी पुरुष के सम्बन्ध में कुछ वचनामृत पान कराइयें, पण्डित और ज्ञानी को हम कैसे पहिचानें और ज्ञान का मार्ग किस प्रकार जाना जाता है?''

भगवान बुद्ध देव बोले–

''यदि आप की एक ऐसे समझदार आदमी से भेंट हो जो आपकी सच्चे खजाने (सत्यधर्म) का पता बतलाता है; जो छोड़ने योग्य बातों को बतलाता है और जो धिक्कार भी देता है, ऐसे ज्ञानी का अनुसरण करना उचित है; उसके पीछे चलने वालों को लाभ ही होगा हानि नहीं।

उसकी धिक्कार सुनिये, उसके उपदेश सुनिये, अनुचित बातों को रोकने दीजिये। भले पुरुष इस के लिये उसे प्यार करेंगे और बुरे लोग उस से घृणा करेंगे।

दुराचारियों के साथ मित्रता मत कीजिये, नीच पुरुषों को अपना मित्र मत बनाइये, नेक आदमियों के साथ दोस्ती कीजिये और सबसे श्रेष्ठ आदमियों को अपना मित्र बनाइये।

जो ज्ञान–सागर में डुबकी लगाता है वह स्थिरचित्त होकर सुख पूर्वक रहता है। आर्यों के बताये हुये धर्म उपदेशों पर चलने से मुनि को सदा परमानंद मिलता है।

जैसे नहर खोदने वाले अपनी इच्छानुसार पानी को ले जाते हैं; बाण बनानेवाले अपनी इच्छानुसार बाण को टेढ़ा कर लेते हैं बढ़ई लकड़ी के कुंदे को टेढ़ा कर लेते हैं, वैसे ही बुद्धिमान अपनी अपनी इच्छानुसार अपने आपको ढाल लेते हैं।

जैसे ठोस चट्टान को प्रचण्ड पवन हिला नहीं देती वैसे ही निन्दा और स्तुति बुद्धिमान को विचलित नहीं कर सकती।

बुद्धिमान आदमी धर्मोपदेश सुनने के बाद गम्भीर, समतल और स्थिर सरोवर की तरह शांत हो जाते हैं।

वे विषय–भोग की तृप्ति की इच्छा से चाहे कुछ ही हो जायँ (सत्पुरुष) अपने काम में बढ़े चले जाते हैं, बकवाद नहीं करते; चाहे सुख में हों चाहे दु:ख में ज्ञानी पुरुष न तो कभी गर्व में ही आते हैं और न विषाद ही करते हैं।

जो अपने लिये स्त्री, संतान, लक्ष्मी, प्रभुता और अनुचित रीति से अपनी उन्नति की अभिलाषा नहीं रखता वही साधु ज्ञानी और धर्मात्मा है।

–शेष पृष्ठ सं. 32 पर

thearyasamaj.org

हम रुकेंगे नहीं, हम झुकेंगे नहीं

रचयिता– शान्ति नागर

सीखा हिमगिरि से हमने अडिग रहना,
सीखा गंगा से हमने सतत बहना,
है शपथ प्राण की आत्म सम्मान की,
हम झुकेंगे नहीं, हम रुकेंगे नहीं॥

स्वप्न पूरा करेंगे शहीदों का हम,
फिर जगद्गुरु बनेगा मेरा देश यह,
रोशनी प्यार की दे सके विश्व को,
ऐसा सूरज बनेगा मेरा देश यह।
काले साये मिटायेंगे आतंक के,
शान्ति सुख का उजाला उजाला रहे।
हम समर्थक रहे विश्व बन्धुत्व के,
हमने रिश्ते निभाये हैं अपनत्व के।

आप मानें न मानें खुशी आपकी,
हम बँटेंगे नहीं, हम हटेंगे नहीं॥

हमने लालच किया सम्पदा का नहीं,
साथ छोड़ा कभी आपदा में नहीं।
सिसकियों के घरों में खुशी बाँटते,
आँसुओं की छतों पर हँसी बाँटते।

हमने उजड़े हुओं को बसेरे दिये,
हमने सोते हुओं को सबेरे दिये।
द्वेष की खाइयाँ नित्य भरते रहे,
हम अतिथि यज्ञ श्रद्धा से करते रहे।

thearyasamaj.org

आप रोकें चरण नाश के,
रोक देंगे वहीं, टोक देंगे वहीं॥

हाथ की उंगलियों से अलग दीखते,
मुठ्ठी बन जायेंगे आपदा के समय।
हैं अलग शाख के हैं अलग रंग के,
माला बन जायेंगे अर्चना के समय।
मोम मिट्टी का हो, सोने चाँदी का हो,
रोशनी बाँटता एक सी हर दिया।
एक थे, एक हैं, इक रहेंगे सदा,
हर उजाले ने आशीष हमको दिया।

हर अँधेरे से लड़ने की सामर्थ्य है,
जिन्दगी का हमारी यही अर्थ है।

आप समझें न समझें खुशी आपकी,
हम बुझेंगे नहीं, हम जलेंगे नहीं॥

❁❁❁

महापुरुषों की जयन्ती

महावीर स्वामी	2 अप्रैल
हनुमान	4 अप्रैल
अनुसूया	8 अप्रैल
कस्तूरबा गांधी	11 अप्रैल
गुरु तेगबहादुर	14 अप्रैल
बाबा साहब अम्बेडकर	14 अप्रैल
महात्मा हंसराज	19 अप्रैल
परशुराम	20 अप्रैल
छत्रपति शिवाजी	20 अप्रैल
आद्य शंकराचार्य	23 अप्रैल
सीता	27 अप्रैल

महापुरुषों की पुण्यतिथि

मंगल पाण्डे	8 अप्रैल
वीर खुदीराम	12 अप्रैल
डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन	17 अप्रैल
तात्या टोपे	18 अप्रैल

गुड फ्राइडे	3 अप्रैल
विश्व आरोग्य दिवस	7 अप्रैल
जलियाँ वाला बाग दिवस	13 अप्रैल
वैज्ञानिक आर्य भट्ट	19 अप्रैल

प्रथम उपग्रह भारत ने छोड़ा (1975)

thearyasamaj.org

अज्ञानी माताओं का सन्तान पर प्रभाव

लेखकः सदानन्द स्वामी

अभाग्य वश इस देश की मातायें अज्ञानी हैं। वह घर की चार दीवारी ही में बन्द रहती हैं। उनको कूप मण्डूक की भांति वाह्य संसार का कुछ भी ज्ञान नहीं है। अतः उनकी शारीरिक तथा मानसिक शक्ति निर्बल है और अपनी अधूरी शक्तियों का प्रभाव अपनी सन्तान पर डालती हैं। यह भी एक कारण है, कि हमारी कन्यायें भी बहुधा दुर्बलेन्द्रिय और अल्पज्ञान वाली होती हैं। विद्वान ही विद्या की महिमा को जान सकता है। हीरे की परख जौहरी को ही होती है। अज्ञानी मातायें बहुधा अपनी कन्याओं की शिक्षा तेरह वर्ष की आयु से पूर्व ही समाप्त कर देती हैं, फिर कन्याओं को घर की चार दीवारी ही में बन्द रहना पड़ता है, जहां बुद्धि विकास तथा विद्या प्राप्ति असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है, और धीरे-धीरे प्राप्त विद्या भी विस्मरण हो जाती है, उसके स्थान माता की प्रकृति तथा अज्ञान उनमें घर कर जाते हैं। अल्प विद्या भी हानि कारक होती है, जो उनकी शारीरिक तथा मानसिक और आत्मिक शक्तियों के विकास में बाधक होती है। अज्ञानी स्त्री अपने पतिदेव को अपनी कन्या के विवाहार्थ बार-2 हठ करके बाध्य करती है, कि कन्या की अवस्था पर्याप्त हो गई है। इसलिये जहां तक हो सके कोई वर तलाश करके इसका शीघ्र ही विवाह किया जावे।

माता के अनुचित कथन का प्रभाव कन्याओं पर भी स्वाभाविक होता है, जिसका परिणाम शुभ नहीं होता। विद्वान् पति भी अज्ञानी पत्नि से सम्बन्ध करके बहुत क्लेश और दुःख भोगता है। जबकि वह अपनी कन्या को उच्च शिक्षा का पात्र बनाना चाहता है, क्योंकि वह शरीर और आत्मा की कीमत को समझता है, साथ ही वह अपने कर्त्तव्य कर्म के लिये अपने आपको उत्तरदाता मानता है, और अपने विचार को अपनी पत्नि पर प्रगट करता है। ❁❁❁

पाठकों से नम्र निवेदन

'तपोभूमि' मासिक पत्रिका के उन पाठकों से निवेदन है जिन्होंने वर्ष 2014 तथा 2015 का वार्षिक शुल्क 150/- एक सौ पचास रुपये अभी तक जमा नहीं कराया है वे शीघ्र ही **'सत्य प्रकाशन'** के पते पर कार्यालय को भेजकर जमा करायें ताकि पत्रिका सुचारू रूप से आपको प्राप्त होती रहे।

-व्यवस्थापक

thearyasamaj.org

स्वावलम्बन

लेखकः लक्ष्मीनारायण दीनदयाल अवस्थी

भूख से मरता वहीं जो और के बल नाचता।
जो पेट भरने के लिये भी और को जा याचता।।
बन कर स्वावलम्बी जगत में न जो न करता कर्म है।
मैं पूछता हूं पाठको? क्या मनुज का यह धर्म है।।
कर्म अपने बल करो क्या और का मुख ताकते।
धिक्कार है जो मनुज होकर दीन वाणी भाषते।।
बन जाव स्वावलम्बी जगत में कुछ नहीं दुःसाध्य है।
कठिन से भी कठिन जो हो सरल है औसाध्य है।।

प्रत्येक पुरुष को स्वावलम्बी होना चाहिये परन्तु स्वावलम्बी वही मनुष्य रह सकता है जो कार्य करने से अपना पद पीछे नहीं हटाता है। स्वावलम्बन शब्द उसी पुरुष के लिये व्यक्त किया जायगा जो अपने भरोसे रहकर सदैव कार्य करने में प्रवृत्त हो और जिसकी कार्यवाही कर्म बल पर चल रही है। टूटे घर में बैठ कर महलों के सपने देखनेवाले पुरुष कभी सुखी नहीं रह सकते।

यह जीवन स्वाभावों के आधार पर बना है परन्तु स्वांस लेना एक प्रकार का आभ्यन्तरिक कार्य है तब उस का वाह्य कार्य कर उस का सदुपयोग क्यों न किया जाय, इसलिये यदि सुखी रहना चाहते हो तो अपने पैरों पर खड़े रहो दूसरों के आधार पर मत खड़े रहो। यदि तुम जिसके सहारे खड़े हो वह गिर जायगा तो तुम्हें वर्वश उसके लिये गिरना होगा, अपनी इच्छा एवम् मनोकामना की कभी पूर्ति न कर पावोगे। संसार में वह सबसे श्रेष्ठ बल है जो अपना है दूसरों का बल अपने काम में आये न आये। सम्भव है कि दूसरे कभी अपना बल आपको न दे सके। इसलिये याद रखिये कि आप अपने ही बल पर खड़े रहने का प्रयत्न करें, यदि आप अपनी स्वतन्त्र इच्छायें रखते हैं तथा यदि आप के हृदय में किसी भी कार्य सिद्धि की कामना है तो आप केवल अपने ही भरोसे कार्य परायण रहकर कार्य सिद्धि की ओर प्रवृत्त हो जाइये।

हम यह मानते हैं कि भीख मांगना भी एक प्रकार का कार्य है परन्तु विचारिये तो कैसा परवशता एवम् पराये निहोरे कराने हारा कार्य है। हमको कैसी दीनता के साथ अपनी रोती सूरत बनानी पड़ती है, हमको परवश दूसरे को देख रोना पड़ता है, वृथा आडम्बर बनाने पड़ते हैं। क्या ऐसे अपकर्म को भी कोई सराहनीय कह सकता है कि जिसमें आत्मगौरव का लेश भी न हो और की बातों पर नाचना पड़े तथा गालियों पर गाकर बताना पड़े, दुतकारने पर पांव पड़ना पड़े। क्या कोई भी पुरुष ऐसा इस संसार में होगा

thearyasamaj.org

कि जिसकी आत्मश्लाघा इस प्रकार हीनता पर प्राप्त हो चुकी हो। यदि वास्तव में ऐसे भी जीवित निर्जीव पुरुष प्रस्तुत हैं तो उनके विषय में अधिक लिखना भी पाप है। क्योंकि उनको लिखने से कोई असर नहीं हो सकता कि जिनके हृदयांकुर पहले से मुरझा चुके हैं कि जिनमें स्वावलम्बन की मात्रा शेष नहीं है। अकर्मणय पुरुषों को जरा विचार करना चाहिये कि उनके भी वही हाथ, पैर हैं जो औरों के हैं और जो दूसरों को अपने पेट, तथा आपके भी पेट के लिये कैसी-2 कठिन कोशिशें करनी पड़ती हैं। हम यह जानते हैं कि कदाचित मांगनेहारे उन कर्मण्य पुरुषों की अपेक्षा अधिक प्रयत्न करते हों, परन्तु उनका ऐसा करना समाज के समक्ष कोई पदार्थ नहीं है और जब उनके कर्मों की गिनती ही समाज में कोई नहीं है तब उनका कार्य करना सदा निरर्थक है। निष्प्रयोजन हाथ हिलाना भी कार्य माना जा सकता है परन्तु जब उसको समाज में कोई गणना ही नहीं तब उनका कार्य करना किसी प्रकार का नहीं हो सकता, इसलिये कर्मवीर बनो और भीख मत मांगो। इस जिल्लत के कार्य का परित्याग करो देखो समाज कैसा आदर करने लगती है अभी जो समाज को देखकर अपनी गर्दन नीची हो जाती है वही अपने पैरों खड़े रहने से अपनी छाती ऊपर को उभर आयेगी। आज अपना जो सलाम करते हैं तो कल स्वावलम्बी बनते ही दूसरों को तुम्हें सलामें झाड़ना होगी, परन्तु बात केवल स्वावलम्बी बनने की है।

इससे यह न समझ लेना चाहिये कि जिसको सहायता की आवश्यकता हो उसको मदद न देनी चाहिये। यह कर्मक्षेत्र जग है, यहां प्रत्येक प्राणी इसीलिये पैदा होता है कि वह कार्य करे और अपना उपकार करे और साथ में दूसरों का भी। जग में वही मनुष्य है तथा उसी में मनुष्यत्व है जो औरों को सहायता तथा सुख पहुंचाये। परोपकार से अपना भी भला है, किसी को दाम देते समय कितना हर्ष होता है। चित्त प्रसन्न होकर बल को बढ़ाता है और हृदय को पवित्र करता है जिसको सहायता पहुंचाई है उसके हृदय से आपके लिये भलाई की कामनाओं की किरणें विस्तृत होती हैं परन्तु लोगों का केवल उपदेश देना परोपकार नहीं।

आप जिस प्रकार के हो उसी प्रकार का रूप लोगों के सामने रखियेगा, आपकी बात संसार में जभी मानी जायगी जब आपकी कृति लोगों के सामने प्रस्तुत होगी। याद रखिये बात उसी की मानी जाती है जिसकी कृति होती है। यदि आप चिल्ला कर उपदेश करेंगे तो सब आदमी आपका अनुकरण कर आप सरीखे चिल्लाने लगेंगे और तमाम शोर हो जायगा क्योंकि वे लोग आपको चिल्लाते हुये अवलोकेंगे और आप ही के अनुयायी हो जायेंगे इसलिये आपको चाहिये कि आप अपने कार्य को पूर्ण ग्रहण कर तथा उसको योग्य बना करके दिखलाइये बिना परीक्षित उपदेश कभी उपदेश नहीं कहा जा सकता। अपने उद्देश्यों को पहले सिद्ध कर फिर अपने विचार लोगों पर व्यक्त कीजिये तब आप की बात मानी जा सकती है अन्यथा नहीं अब आगे चलिये और मृत्यु से बचिये। रात, दिन प्रयत्न कर अपनी शक्तियों को जीवित रखना भी प्रत्येक पुरुष का धर्म है, प्रत्येक पुरुष को चाहिये कि अपनी शक्तियों को सदा जीवित रक्खे क्योंकि कतिपय प्रत्येक शक्ति तभी जीवित रह सकती है, जब उनका सदा उपयोग लिया जाय।

thearyasamaj.org

जहां तक देखते हैं वहां तक शक्तियों की वृद्धि तभी है जब उनका सतत् उपभोग लेते रह्ते हैं ऐसी अवस्था में जो अपने आपको चिरजीवी बनाना चाहता हो उसका धर्म है कि वह उसका उपभोग करे। इसलिये मुर्दा की तरह मत बैठे रहो नहीं तो वास्तव में वैसे ही बन जावोगे।

दुनिया में कोई एक क्षण के लिये भी विश्राम नहीं लेता, आप यदि एक क्षण का सौ वां अंश भी मांगे तब भी नहीं पा सकते और यदि ऐसे क्षण का उपभोग करना भी आप अपना धर्म नहीं समझते तो यह आपकी बुद्धिमत्ता है। ऐसे क्षण को खो देना अपना धर्म नहीं कि जिस पर बड़ा भारी भार निर्भर है। आप किसी घड़ी से कोई उसके समय का अंश मांगिये वह कभी न देगी वह आप की आप अपने टिक्-2 शब्द द्वारा कट-2 काटती जाती है उसे आपकी परवाह नहीं; परन्तु आप का धर्म है कि आप उसकी चिन्ता करें क्योंकि संसार का धर्म है कि जो अपनी नहीं सुनता और अपने से बड़ा होता है उसकी अपने को सुनना चाहिये। इसलिये अपने कार्य की सूझ आप स्वयम् अपने आप कीजिये तभी सफलता मिल सकती है। याद रखिये बिना अपने मरे स्वर्ग नहीं मिल सकता, यहां यह मसल कभी की प्रचलित एवम् प्रख्यात है। तब क्या अपने हाथ ही पर हाथ धरे बैठे रहें? कदापि नहीं स्वावलम्बी बनिये और अपना कार्य अपने हाथ कीजिये।

संसार का दूसरा पर्यायवाची शब्द 'जग' है जिसका अर्थ जाग्रत, सावधान तथा होशियार आदि है और यह नाम इसलिये रक्खा गया है कि जिसका अर्थ, मनुष्य जीवित रहे तब तक न भूले। प्रत्येक मनुष्य को जग शब्द का यथार्थ मतलब सदा मालूम रहना चाहिये। यहां वही मनुष्य जीवित है जो जग के नाम को सार्थक करता है। यदि कोई पुरुष ऐसा नहीं करता तो उसे इस जग में जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं और न उसके लिये जरा सी भी जगह इस जग में नीति के अनुसार प्राप्त हो सकती है। जगते रहना तथा सावधान रहना ही जग में रहना है अन्यथा जीना भी मरना है।

देखो तो जो सुख की नींद सोता है उसे पहले कर्म ररत रहना पड़ता है और उसी को नींद भी सुखदायक आती है जो कार्य करता रहता है बेकार को तो नींद भी बराबर नहीं आती उन को तो जागते ही दिन रात व्यतीत करना होता है और यदि नींद आती भी होगी तो सो भी आधी। वे सारी रात स्वप्नों घोर यंत्रणा में रैन बिताते होंगे, उनका दिन और रात दोनों एक ही समान व्यतीत होता होगा। नींद उन लोगों का साथ छोड़ देती है जो कर्म हीन होते हैं, उनको रात्रि भी अशान्ति से व्यतीत करना होती है जो दिन को निठल्ले बनकर हँसी ठठोली में अपना समय व्यतीत कर देते हैं। इसीलिये प्रत्येक पुरुषों का धर्म है, कि वे कार्य परायण बनें। दुनियां के सारे सुख कर्मणय पुरुष के लिये बने हुये हैं, तब भला अकर्मणय पुरुष कैसे सुख की नींद सो सकता है। "कदापि नहीं"। वे ऐसे महान सुख का बिलासिता तभी बन सकता है जब वह कर्मपरायण बन ले। यदि नींद का अपूर्व आनन्द पाना है तो कार्य में ररत हो जाइये और अलौकिक मौज उड़ाइये। ❁❁❁

thearyasamaj.org

स्वास्थ्य चर्चा

स्वास्थ्य के लिए धूप

लेखकः रामचरण

मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए धूप (सूर्य के उन्मुक्त प्रकाश) की उतनी ही आवश्यकता है, जितनी काम के लिए। इस पृथ्वी पर जितना कुछ भी जीवन हम देखते हैं उसका आधार सूर्य रश्मि है। इसीलिए सूर्य को इस देश में अति प्राचीन काल से "आरोग्य का देवता" मानते आते हैं। नित्य हर ऋतु में कुछ देर तक अपनी खुली देह पर सूर्य की सुनहरी किरणों को खेलने दीजिए। सिर को जरा बचा रखिए। इस प्रकार अपूर्व आरोग्य शक्ति आप अपने शरीर में संचित कर सकेंगे।

आप कितना पानी पीते हैं?

यह प्रश्न आपके स्वास्थ्य के लिए बड़ा आवश्यक है। कम पानी एक नहीं अनेक रोगों का कारण है। कम पानी पीने से पान-क्रिया ठीक नहीं होती। कम पानी-पीना कब्जीयत का एक प्रधान कारण हैं। कम पानी-पीना सिर के भारीपन का भी कारण हो सकता है, और कम पानी पीने से पसीना और पेशाब कम होता है जिससे दो तरह के भारी दोष हुआ करते हैं-(1) शरीर के भीतर का संचित विकार अच्छी तरह नहीं निकल पाता और (2) अल्प तथा अन्य विषैले द्रव्य जो पेशाब के रास्ते निकलते हैं वे गाढ़ा होने के कारण मूत्राशय के सूक्ष्म यन्त्रों को खराब कर देते हैं। मूत्र के आधे से अधिक विकार कब्जीयत, चित आहार और कम पानी पीने के कारण हुआ करते हैं। इसलिए, कम से कम छः गिलास पानी नित्य पीने का नियम कर लीजिए।

पसीने की बू

बहुत कम लोग यह जानते हैं कि उनके पसीने की बू का उनकी आन्तरिक दशा से क्या सम्बन्ध है। पसीने में तेज बदबू रहने का साफ अर्थ है कि पेट मैला है। मूत्राशय ठीक काम नहीं कर रहा है और आहार का चुनाव गलत होता है। पानी कम पीना तो पसीना में बदबू रहने का एक बहुत बड़ा कारण है। यदि आपके पसीने में कुछ भी बदबू है तो आपको सावधान हो जाना चाहिए। आहार को दुरुस्त कीजिए, अधिक पानी पीजिए और नियमित व्यायाम कीजिए और भीतर और बाहर सफाई रखिए।

गरम जल

गरम जल पेट के शूल का इलाज है। गरम जल की बोतल से पेट को गरम रखने से पेट के दर्द में बहुत जल्दी आराम होता है। और गरम पानी पिलाकर आधे से अधिक पेट के दर्द और अनपच छुड़ाए जा सकते हैं। पीने क गरम जल में दो चार बूंद नींबू का रस देना न भूलिए। जब पेट में सख्त दर्द हो और कोई उपाय न सूझता हो तो नीम-गरम पानी की पिचकारी (Anima) दे दीजिए। ❁❁❁

thearyasamaj.org

मन लगाने की विधि

मन की चंचलता सम्यक् ध्यान में बाधक है। योगियों का सबसे बड़ा शत्रु मन कहा जाता है। किसी ने मन को मूर्ख कहकर किसी ने शठ बताकर उसके सुधारने की आवश्यकता बताई है। इसमें सन्देह नहीं कि बिगड़ा हुआ मन मनुष्य को ठौर ठिकाना छुड़वा देता है। परन्तु सध जाय तो ऐसा योग का उपयोगी साधन कोई नहीं।

वस्तुतः मन की चंचलता इतनी निन्द्य नहीं जितनी बताई जाती है। चंचल मन प्रतिभा का भण्डार है। जितनी तीव्र मन की गति होगी, उतना अधिक तत्वों का ग्रहण अन्तःकरण में होगा। कई मनुष्य अनेक स्वरों तथा भाषाओं को एक साथ सुन कर उनको समझ ही नहीं जाते किन्तु उनके गुण दोषों की परीक्षा भी कर सकते हैं। उनका मन क्षणमात्र में कई विषयों में दौड़ धूप कर लेता है। एक विषय के कई अवयव होते हैं। जिनके मन की गति वेगवती है, वह बहुत शीघ्र एक अवयव से दूसरे और दूसरे से तीसरे का घेरा डाल लेते हैं। मन्द गति वाले घण्टों एक ही अवयव पर नष्ट कर देते हैं।

समाहित और स्तब्ध मन में भेद है। समाहित वह मन है जिसकी गति को रोका नहीं गया, किन्तु नियम में लाया गया है। स्तब्ध वह है जिसमें गति ही नहीं। ऐसा मूढ़ों का मन है कि जिन्हें कुछ आता नहीं।

इसमें कुछ लाभ नहीं कि मन केवल एक विषय पर ही घण्टों अटका रहे। लाभ इसमें है कि उस विषय के प्रत्येक अवयव में उतनी गहरी डुबकी मारे जितनी उसके सम्यक् ज्ञान के लिए चाहिए। अर्थात् उसमें गति तो रहे परन्तु उसकी वृत्ति गहराई की ओर हो। जब उस अवयव से निवृत्त हो तत्काल ही दूसररे अवयव में चला जाए। इसी से उसकी चाल सूक्ष्म होती है, और सूक्ष्म से सूक्ष्म विषय की ओर प्रवृत्ति होकर गूढ़ तत्वों की उपलब्धि का सामर्थ्य आता है।

मूर्तिजन में यही दोष है कि उसमें गहराई नहीं। पत्थर अथवा पीतल पर ठहराने से मन स्तब्ध ही होगा। उसे जड़ पदार्थ का ही विचार रहेगा क्योंकि उसकी वृत्ति स्थूल है। इससे तो मन चंचल रहे, अच्छा है।

साकारोपासना निराकारोपासना की भूमिका कही जाती है, कि जब मन स्थूल पर रुकने लगा, इसे शनै-2 सूक्ष्म ध्यान का अभ्यास करायेंगे। भला यह क्यों कर होगा? पत्थर के निरन्तर ध्यान से बुद्धि पाषाणवत् स्तब्ध हो जाती है। फिर वह इस योग्य ही नहीं रहती कि उसे सूक्ष्म विचारों में डाला जाए।

गणित ध्यान का विषय है। इसके लिए अध्यापक प्रहिले मूर्ति-पूजन का अभ्यास नहीं कराता कि पहले बालक का चित्त एकाग्र हो ले, फिर 1, 2 सिखायेंगे। प्रथम ही गणित में डाल लेता है। छात्रों की सुविधा के लिए कभी प्राकृतिक प्रयोगों से, कभी रेखाओं और चित्रों से सहायता लेता है। वस्तु और चित्त का अनुपात काल्पनिक होता है परन्तु ओंकार-साम्य वास्तविक है।

योगी निराकार के गुणों का चिन्तन साकार प्रकृति की सहायता से करता है। वह सृष्टि जगत् में सृष्टिकर्ता के गुणों को पाता और आनन्द में निमग्न होता है। इस एक ही विषय में मन की सारी चंचलता

thearyasamaj.org

समाप्त हो जाए, फिर भी उसकी समाधि वैसी की वैसी बनी रहेगी। अघमर्षण मन्त्र में इसी विधि से हृदय क्षेत्र में परमात्मा से प्यार का पौधा लगाया है। इसमें मूर्ति को सामने रख कर क्या विचारा? यही कि इसने सृष्टि नहीं की? यह संसार की नियन्त्री नहीं। यदि मूर्ति अपनी भी नियन्त्री होती, तो भी 'नेति' कहकर परमात्मा का ध्यान कर लेते।

सर्व-शक्तिमान् के ध्यान में बाहुबल, विद्या-बल, बुद्धि-बल, समाज-बल, आत्मिक-बल इत्यादि कई बलों का विचार सहसा मन में आयेगा। अनेक पहलवानों, असंख्य नीतिज्ञों, अगय विद्वानों और समाज समूहों का चित्र आँखों के सामने फिरेगा। इन सबका प्रत्यक्ष स्वरूप आँखें न देख पायेंगी। परन्तु बुद्धि समझ लेगी। फिर जी में आयेगा 'नेति' इतना नहीं।

ऐसे ही परमात्मा के और गुणों पर मन को अत्यन्त वेग से काम लेना होगा। अचिन्त्य का एक-2 गुण अथाह है। वेद ने उसे 'सदावृधः' कहा है अर्थात् जितना उसे समझो उतना आगे बढ़ता जाता है।

साकार का पूजन ऐसे ध्यान में बाधक है। मूर्ति मन की गति को स्तब्ध करती है, और हमें आवश्यकता उसे नियमबद्ध करने की है।

समाधि में चित्त एक विषय का ही रहता है, दूसरे पदार्थों में नहीं जाता, यद्यपि उपस्थित विषय में उसका वेग दूर की खोज निकालता है सही। वेद में मन के लिए यह प्रार्थना नहीं की, कि निःसंकल्प हो, किन्तु उसका शिव संकल्प होना माँगा है। एक विषय के निरन्तर ध्यान में उसके अवयवों के बहुत्व के होते हुए भी उनका परस्पर सम्बन्ध बिगड़ने नहीं पाता। यही आनन्द का कारण है।

मन को समाहित करने के लिए उसको ऐसा विषय दो जिसमें इसको दौड़-धूप का खुला स्थान हो। परमात्मा के प्रत्येक गुण में ऐसी विशालता की पराकाष्ठा है। अनन्त के किसी गुण का अन्त नहीं। यदि सान्त पदार्थ पर ध्यान जमाया, तो अनन्त की ओर जाने की अपेक्षा उससे विमुख होने का अधिक यत्न किया।

सन्ध्या के मंत्रों में कहीं सृष्टि के वैचित्र्य को देखकर, कहीं इन्दियों के लिए बल माँग कर, कहीं पवित्रता के प्रार्थी होकर कहीं छहों दिशाओं का मानसिक चक्र लगाकर कहीं कल्याण, कहीं अभय की याचना से परमात्मा के स्वरूप को पहिचानना होगा।

मंत्रों के अर्थ आने से पूर्व इस रहस्य से वंचित रहोगे निरर्थक शंख जब तक बजे बजाओ। जब अर्थ आ गये, तब मन का समाहित होना न होना तुम्हारे यत्न पर निर्भर है। मुख मंत्रों के उच्चारण से शुद्ध होगा। मन लोक-लोकान्तरों की सुधि लेगा। इस चंचलता से घबराओ मत। इसके आगे धातु का लिंग खड़ा किया तो उसे और चंचल बना लोगे। यह मंत्र से विमुख होने का एक और साधन होगा। मंत्र मननवाची धातु से है। सन्ध्या में मन की एकाग्रता यह है कि मंत्रार्थ का ध्यान रहे।

इसकी सुगम और अचूक विधि यह है कि बलपूर्वक अपनी वृत्ति उन भावों पर रखो जो मंत्रों के शब्द जाल में गुंथे हुए हैं। जिस मंत्र के अर्थ से मन भागे, उसका उच्चारण एक बार और करो। जब तक प्रत्येक मंत्र का अर्थ एक बार हृदय में से न गुजर जाये तब तक उस मंत्र को न छोड़ो। कुछ काल के अभ्यास से सन्ध्या तुम्हारे स्वभाव का अंग बन जायेगा और ज्योंही किसी मंत्र पर मन लगाओगे उसका अर्थ स्फुरित होने लगेगा। ❁❁❁

thearyasamaj.org

बोध कथा

लेखकः स्वामी सर्वदानन्द सरस्वती

एक बारहसिंगा किसी सरोवर के किनारे जलपान कर रहा था, उसने अपनी आकृति का आभास उस जल में जो देखा तो प्रसन्नता से उछल–कूदकर पुनः उसको देखने के निमित्त जलाशय के किनारे खड़ा होकर मन में विचार करने लगा कि मैं इतना सुन्दर हूँ कि जिसके सौन्दर्य से जंगल भी शोभायमान हो रहा है, मेरी मनोहर आकृति को देखकर कौन है, जो आह्लाद में न आता हो। इस सबका कारण यही प्रतीत होता है कि सर्वसंसार के निर्माता परमात्मा ने मुझे अपने हाथ से ही बनाया है। क्रम–प्राप्त सींगों का झाड़ कितना शोभायमान मेरे शिर पर लगाया है। अपनी आकृति को सरोवर में बार–बार देखकर प्रसन्न होता है। सहसा जब इसका ध्यान अपनी हलकी और पतली टाँगों की ओर गया तो शोक में विधाता पर भी कोप करने लगा। विचार करता हुआ नेत्रों में आँसू भरता है, मन में कहता है कि मनुष्य हो या ईश्वर, भूल ने किसी का भी पीछा नहीं छोड़ा है, इसका अधिकार प्रत्येक कार्य के किसी–न–किसी अंश में बना ही रहता है। सोचता है कि यदि मेरे शरीर को इतना सुन्दर और पुष्ट बनाना था और शिर को इस प्रकार मनोरम शृंगार से सजाना था, तो भला टाँगों को इतना दुर्बल, अयोग्य बनाकर अपनी अज्ञानता का परिचय क्यों दिया? इसी अवसर में एक चीता आ निकला, बारहसिंगा को देखकर उस पर आक्रमण करने लगा। जब तक मैदान था, तब तक बारहसिंगा ने चीते को पास भी न आने दिया, वह आगे ही बढ़ता गया। दूसरा पीछा करता ही गया। अन्त में एक झाड़ी से निकलते हुए बारहसिंगा के सींग एक लता में उलझ गये, फिर कहाँ सुलझ सकता था। चीते ने आकर एक पंजा मारा, बेसुध होकर गिरता हुआ इन शब्दों में संसार को उपदेश सुना गया कि ओ बेसमझ! जिसको देखकर मन में दुःखी था, उसी ने तो बचाया और जिसे देखकर खुश हुआ था, उसने मौत के पंजे में फँसाया।

सारांश– यह है कि भारतप्रजा प्रचलित रसमो–रिवाज को जिससे इसको हर समय हानि हो रही है समझाने पर भी उसके छोड़ने में कष्ट मान रही है, इनके रहते हुए इसका जीवन नहीं रहता और वेदों का सदुपदेश जो इसके लिए बड़ा ही लाभदायक है, उसके ग्रहण करने में असमर्थ सिद्ध हो रही है, अतएव यह न दुरवस्था से निकलती है और न सुव्यवस्था में आती है। ❁❁❁

'तपोभूमि' मासिक पत्रिका मंगाने हेतु

एक वर्ष के लिए 150/– एक सौ पचास रुपये वार्षिक शुल्क,

पन्द्रह वर्ष के लिए 1500/– एक हजार पाँच सौ रुपये

आज ही भेजिये।

thearyasamaj.org

संकल्प-शक्ति का विकास

लेखकः आचार्य अभयदेव विद्यालंकार

इस लेखमाला में संकल्पशक्ति क्या है, इसे कैसे विकसित करना चाहिए, यह प्रकट किया जाएगा। प्रारम्भ में (इस प्रथम प्रकरण में) 'इस शक्ति को किस शब्द से पुकारें, इसका ठीक नाम क्या है?' इसी का विवेचन करना आवश्यक प्रतीत होता है। हिन्दी में बहुत लोग इस शक्ति को 'इच्छा-शक्ति' नाम से पुकारते हैं परन्तु यह नाम ठीक नहीं है। यह नाम क्यों ठीक नहीं है, यह बतलाने के साथ-साथ इस प्रथम प्रकरण में यह भी निर्धारित किया जाएगा कि फिर इसका ठीक नाम क्या है?

यह शक्ति संसार में सर्वोपरि शक्ति है। स्वयं परमात्मा इसी शक्ति के कारण जीवात्मा-सत्यकाम सत्य-संकल्प कहलाता है अर्थात् आत्मा में ऐसी शक्ति है कि वह जो कुछ कामना करे, संकल्प करे वही सत्य हो जाय-सिद्ध हो जाएँ पर हमारी बद्ध आत्माओं में वह शक्ति विद्यमान नहीं है अतः हमें अपनी आत्मा को बन्धनमुक्त करके उसके 'सत्यसंकल्प' स्वरूप को प्राप्त करना चाहिए, अन्वेषण करना चाहिए। प्रजापति का सब जीवों को उपदेश है कि **'य आत्मा अपहतपाम्पा विजरो। विमृत्युर्विशोको विजिघित्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसंकल्पः सोऽन्वेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यः।** छान्द0 उ0 8-7-1

परन्तु सत्यसंकल्प आत्मा के प्राप्त करने में सबसे बड़ी रुकावटें ये हमारी इच्छाएँ ही हैं। इसी उपनिषद् वाक्य के देखने से स्पष्ट है कि जिघित्सा और पिपासा तक की इच्छाएँ हटने पर सत्यसंकल्पता मिलती है। इसलिए आत्मा की इस शक्ति को 'इच्छा' (इच्छा शक्ति) नाम देना तो इसे बिलकुल उल्टे नाम से पुकारना है। इसी इच्छा को संस्कृत में तृष्णा, वासना, कामना आदि नामों से पुकारा गया है। जब तक हमारी ये तृष्णाएँ, इच्छाएँ, वासनाएँ शान्त नहीं हो जातीं तब तक हम अपने सत्यसंकल्प आत्मा को नहीं देख सकते, नहीं पा सकते। इच्छा व वासना का स्थान नाभिस्थ सूक्ष्म प्राण (या चित्त का निम्नतम स्थूल भाग) है परन्तु शक्ति का स्थान बुद्धि (या महत्तत्व) में या बुद्धि से भी ऊपर (शिर में) है। शक्ति और इच्छा में द्यौ और पृथिवी का (आकाश-पाताल) भेद है। यद्यपि इच्छा का और इस शक्ति का कुछ परस्पर सम्बन्ध भी जरूर है (तभी इसका नाम 'इच्छा शक्ति' बोलने की प्रवृत्ति होती है) तथापि चूंकि यह शक्ति इच्छाओं के निरोध से प्राप्त होती है अतः इसे 'इच्छा शक्ति' कहना बड़ा भ्रमजनक है।

तो फिर उस शक्ति का ठीक नाम क्या है? यह जानने के लिए यदि हम अपने शास्त्रों को ढूंढ़ेंगे तो हमारी दृष्टि तीन शब्दों पर पड़ेगी-ईक्षण, काम, संकल्प। वैसे दैनिक साहित्य में तो क्रतुवाक्, तप, शची आदि बहुत से शब्द हैं जिन पर इस प्रकरण में विचार करना चाहिए किन्तु हमारी भाषा में प्रचलित शब्दों में से इस अर्थ के समीपस्थ शब्द ये तीन ही हैं। मैं इनमें से एक को लेकर क्रमशः कुछ विचार करता हूँ।

(1) ईक्षण या ईक्षा-उपनिषदों में जहाँ परमात्मा द्वारा जगदुत्पत्ति का वर्णन आया है, वहाँ इस शब्द का प्रयोग मिलता है। जैसे ऐतरेय उपनिषद में 'स ईक्षत लोकान्सुजा इति। स इमांल्लोकानसृजत।' एवं इसी उपनिषद् में आगे तीन-चार बार था। बृहदाण्यक उपनिषद् में भी दो बार इसका प्रयोग हुआ है।

thearyasamaj.org

स्वामीजी ने भी 'सत्यार्थ प्रकाश' के सातवें समुल्लास में 'इच्छा' और 'ईक्षण' का भेद दिखलाया है। उन्होंने कहा है कि पूर्ण आप्त काम परमात्मा में इच्छा का होना तो असम्भव है परन्तु वहाँ 'ईक्षण' है जिस ज्ञानमय शक्ति से वह जगत् को करता है। अत: इच्छा के स्थान पर उस शक्ति का उचित नाम 'ईक्षण' या 'ईक्षाशक्ति' सिद्ध हुआ। कई लोगों को 'हरि इक्षा' ऐसे बोलते सुना है। वे तो शायद 'हरि इच्छा' का अपभ्रंश रूप बोलते हैं पर असल में 'हरि ईक्षा' शब्द ठीक है क्योंकि हरि में इच्छा नहीं है, ईक्षा ही है।

(2) काम–उपनिषदों में सृष्टि–रचना के लिए 'ईक्षत' की तरह 'अकामयत' शब्द भी प्रयुक्त हुआ है। (देखिये–तैत्तिरीय 2–6, बृहदा0 1–2,4) अथर्ववेद के दो सूक्तों में भी यही 'काम' शब्द यही (रचना करने वाली शक्ति) अर्थ रखता है। 'सत्यकाम' शब्द में भी काम इसी शक्ति का द्योतक हो गया है चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) में भी 'काम' शब्द इसी शक्ति का बतलाने वाला दीखता है। एक बार स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज ने व्याख्यान में इन चारों फलों का चार आश्रमों के साथ सम्बन्ध सुनाया था। तब उन्होंने तीसरे फल 'काम' के साथ तीसरे आश्रम वानप्रस्थ का सम्बन्ध जोड़ते हुए कहा था कि यहाँ 'काम' का अर्थ 'निष्काम' कर्म है। 'काम' का अभिप्राय 'निष्काम' होना तो मैं तब किसी तरह न समझ सका था परन्तु अब मैं यह देखता हूँ कि यदि 'काम' का अर्थ वहाँ 'ईक्षण शक्ति' हो तब वह ठीक है। क्योंकि ईक्षण तभी प्राप्त होता है जब कि निष्कामत्व (सब कामनाओं, इच्छाओं का अभाव) हो जाता है। यदि चार आश्रमों का चतुर्वर्ग से सम्बन्ध है तब तो 'अर्थ' के बाद और 'मोक्ष' से पहले स्थित इस 'काम' शब्द का अर्थ 'ईक्षण शक्ति की प्राप्ति' ही है।

परन्तु यह 'काम' शब्द 'ईक्षण' के अतिरिक्त दूसरे 'इच्छा' अर्थ में बहुत अधिक प्रचलित हो गया है। असल में इस शब्द में अभिलाषा का भाव शुरू से ही गुप्त है (जैसा कि ईक्षण या संकल्प शब्द में नहीं है।) इसी कारण वेद और उपनिषद् में ही यह शब्द साधारण इच्छा के लिए भी प्रयुक्त हुआ है। आगे जाकर इसका अर्थ 'इच्छा' हो ही गया, ईक्षण का भाव बिल्कुल जाता रहा। गीता में तथा सब ग्रन्थों में काम, कामना छोड़ने और निष्काम होने पर जोर दिया है एवं काम का अर्थ तृष्णा, इच्छा–यही नहीं किन्तु एक खास प्रकार की ही इच्छा अर्थात् मैथुनेच्छा हो गया है (जैसे की काम, क्रोध, लोभ इस गणना में)। अत: यद्यपि वेद आदि में यह शब्द ईक्षण शक्ति से लिए भी प्रयुक्त हुआ है तथापि अब इस शब्द से उस शक्ति का अर्थ नहीं प्रकट किया जा सकता। इसके अतिरिक्त 'काम' शब्द में है तथा (जैसा अभी कहा जाएगा) संकल्प शब्द में जैसा बल और रचना का भाव है, वह भी 'काम' शब्द में नहीं है। इसलिए 'काम' शब्द उस शक्ति के नामकरण के काम का बिलकुल नहीं रहा है।

(3) संकल्प–वेद में परमात्मा द्वारा सृष्टि–रचना के लिए यह शब्द 'सम कल्पयत्' 'अकल्पयत्' आदि रूप से अनेक मन्त्रों में प्रयुक्त हुआ है। 'अकल्पयत्' का अर्थ 'बनाया, रचा' ऐसा किया जाता है। अत: इस शब्द में 'रचना शक्ति' का भी भाव विद्यमान है जैसे कि 'ईक्षा' शब्द में भी स्पष्ट रूप से नहीं है, यद्यपि इसमें ज्ञान का भाव उतना स्पष्ट नहीं है जितना कि 'ईक्षण' में है। 'ईक्षण' मानो शुद्ध शक्ति का द्योतक है तो यह जरा नीचे की शक्ति का द्योतक है। ईक्षण परमात्मा (या आत्मा) की शक्ति है तो

thearyasamaj.org

संकल्प आत्मा (या मन) की शक्ति है। अतः हम मनुष्यों की शक्ति के लिए यह शब्द शायद 'ईक्षण' शब्द से भी अधिक उपयुक्त है। दूसरे इस शब्द में 'बल, सामर्थ्य, शक्ति' का भाव भी स्वयं विद्यमान है क्योंकि यह शब्द 'कृपू सामर्थ्ये' इस धातु से बना है। छान्दोग्योपनिषद् में 'सत्य संकल्पता' दिखलाते हुए 'स यदि पितृलोक कामो भवति संकल्पादेवास्य पितरः समुत्तिष्ठन्ते।' इत्यादि प्रकार से बार-बार अष्टम प्रपाठक के सम्पूर्ण द्वितीय खण्ड में वर्णन किया गया है, उससे यह सिद्ध है कि शक्ति 'संकल्प' रूप ही है। यद्यपि आत्मा को सत्यकाम और सत्यसंकल्प इन दोनों शब्दों से पुकारा गया है तो भी शक्ति का रूप संकल्प इन दोनों शब्दों से पुकारा गया है तो भी शक्ति का रूप संकल्प ही है, काम नहीं।

फलितार्थ यह हुआ कि आत्मा की बिना किसी बाह्य उपकरण के कार्य सिद्ध करने वाली ज्ञानमय शक्ति के लिए 'ईक्षण शक्ति' और 'संकल्प शक्ति' ये दो शब्द बिलकुल उचित हैं। ये ही प्रचलित होने चाहिएं, 'इच्छा शक्ति' शब्द छोड़ देना चाहिए।

अंग्रेजों की भाषा में इस विषय में अधिक उपयुक्त शब्द मिलते हैं। वहाँ इच्छा या तृष्णा के लिए Wish या Desire शब्द है और संकल्प (ईक्षण) शक्ति के लिए जुदा शब्द Will है। Will शब्द में संकल्प शब्द की भाँति क्रिया या रचना का भाव है जो कि Wish या (Desire) में नहीं है। हिन्दी में 'इच्छा-शक्ति'- यह नाम Will Power का अनुवाद करके रखा गया दीखता है परन्तु यह अनुवाद हो सकता है तो शब्द Wish Power या Desire Power बनते हैं। पर Desire या Wish (इच्छा तृष्णा) कोई Power (शक्ति) नहीं होती, शक्ति तो संकल्प रूप होती है। अतः यदि हम अशुद्ध अनुवाद करने की जगह अपना संस्कृत का शब्द ढूँढ़ते तो हमें कम से कम संकल्प शब्द तो आसानी से मिल जाता।

हिन्दी में अभी तक उच्च अध्यात्म का अभाव है। अभी मोटे अर्थ रखने वाले शब्दों से काम निकल रहा है, इच्छा और संकल्प में भी भेद करने की जरूरत नहीं पड़ती। जब गंभीर अध्यात्म-विज्ञान के सूक्ष्म तत्त्व भेदों के लिए भिन्न-भिन्न नामों की जरूरत होगी, तब ये प्रचलित अशुद्ध नाम हमें मुश्किल में डाल देंगे अतः अभी से इस तरफ ध्यान देना चाहिए। ❁❁❁

पृष्ठ सं. 19 का शेष-

संसार में ऐसे बहुत कम पुरुष हैं जो भवसागर पार कर आर्हत (पूर्ण ज्ञानी) पद को प्राप्त करते हैं, अधिकांश लोग इस संसार-सागर के किनारे इधर-उधर भटकते रहते हैं।

लेकिन वे जिन्होंने धर्म के रहस्य को समझ लिया है, उसके अनुसार चलते हैं वे यमराज के दुस्तर राज्य को भी पार कर जाते हैं।

ज्ञानी पुरुष को साधारण जीवन की अन्धकारमय दशा को त्याग कर भिक्षुपद के प्रकाशयुक्त जीवन को धारण करना चाहिये। अपने गृहस्थ को त्यागकर जब पुरुष गृहत्यागी अर्थात् भिक्षु बन जाय तब उसे चाहिये कि वह एकांत में ही पूर्ण आनंद मानें। सब प्रकार के सांसारिक सुखों को पीछे छोड़ और किसी वस्तु को भी अपनी न मानकर ज्ञानी को सभी मानसिक चिन्ताओं से अपने आपको मुक्त करना चाहिये।

जिनके मन में ज्ञान के सातों तत्वों का भली भांति विकास हो गया है, जो किसी वस्तु में आसक्त हुये बिना निवृत्ति में सुख मानते हैं, जिन्होंने विषयविकारों को जीत लिया है और जो ज्ञान से परिपूर्ण हैं वे इस संसार में ही जीवनमुक्त हैं। ❁❁❁

thearyasamaj.org

गतांक से आगे–

ईश्वर ने दुनियां क्यों बनाई?

लेखकः पं० रामचन्द्र देहलवी

मैंने पूछा पादरी साहब से "दर्खास्त तो तब करे जब उसकी जबान हो? जबान तो है ही नहीं, दर्खास्त कैसे करे? यह तो खुदा को खुद ही समझना चाहिये कि अगर खुदा की ख्वाहिश है कि जीवात्मा दरख्वास्त करे तो बिना उसकी दरख्वास्त के पहले उसे जबान देवे, अगर वह दरख्वास्त करे भी तो काहे से करे? वह तो माजूर है, इसलिये बगैर उसकी दर्खास्त के पहले ही उसे जबान दे और जब जबान दे दे तब इन्तजार करे कि हाँ क्या कहता है वह? "मुझे बताइये, पादरी साहब से मैंने कहा–"यह बात ठीक है कि नहीं?" मुस्कराने लगे कहने लगे, "हां बात तो ठीक है।"

इस वास्ते भगवान् ने अपने इल्म की बिना पर यह समझा कि अगर मेरी यह ख्वाहिश है कि जीवात्मा अपनी तमाम बातों के मुताल्लिक मुझसे दर्खास्त करे तो उसको अपने इल्म की बिना पर पहले इसे जबान देनी चाहिये। पूछने की जरूरत नहीं, उसकी हालत जो तकाजा कर रही है, उसी हिसाब से काम करे।

जीवात्मा की हालत शुरू से यह तकाजा कर रही है। क्या कर रही है? हे भगवान् तुम ज्ञान स्वरूप हो मुझे ज्ञान प्रदान करो, हे परमात्मन् आप तमाम साधनों से युक्त हैं और तमाम चीजें आपके पास हैं, प्रकृति आपके पास है। आप मुझे साधन दीजिये जिससे कि मैं आगे उन साधनों से तरक्की कर सकूँ।

इसलिये मंत्र में कहा–**'य आत्मदा बलदा'**, जो आत्मज्ञान का दाता है और बल प्रदाता है। बल आता है साधनों द्वारा। साधन न हों तो बल नहीं आता। इसलिये कहते हैं दोनों प्रकार के बल की प्रार्थना उस मंत्र में की गई है।

तो ईश्वर ने जगत् क्यों उत्पन्न किया? अब कहना चाहिये कि जीवात्मा के लाभ के लिये, जीवात्मा की तरक्की के लिये, अपने लिये नहीं। हां अपना होना सफल यूं हुआ वरना परमात्मा का होना सफल नहीं होता।

मेरा व्याख्यान देना और बाकैफियत जो मेरी है वह सफल कब होती है? जब होती है कि जो आदमी नहीं जानते हैं या कम जानते हैं वह जानने लगें। मेरा जानना सफल हो जाता है। सुनने वाले मुझसे सुनें, तो मेरा बोलना सफल हो जाता है।

ये दुनियाँ निहायत माकूल अजजा (कणों) से बनी हुई है। माकूल अजजा के क्या मायने हैं? कि कितने जुज जरूरी हैं किसी अच्छे नतीजे को पैदा करने के लिये वह अनादि काल से चले आ रहे हैं।

–(शेष अगले अंक में)

thearyasamaj.org

गुरुकुल विश्वविद्यालय, वृन्दावन (मथुरा) में प्रवेश प्रारम्भ

योगिराज भगवान श्रीकृष्ण की जन्मस्थली एवं युग प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती की दीक्षास्थली पवित्र ब्रजभूमि मथुरा में प्रखर राष्ट्रभक्त महाराजा श्री महेन्द्र प्रताप द्वारा प्रदत्त सुविस्तृत भूखण्ड में स्थित श्रद्धेय नारायण स्वामी जी की तपस्थली गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन में प्रवेश प्रारम्भ हो चुके हैं। प्रवेश परीक्षा उत्तीर्ण होने के उपरान्त ही विद्यार्थी को कक्षा 6 एवं 7 में योग्यता अनुसार प्रवेश दिया जा सकता है अथवा जिस विद्यार्थी को अन्य विषयों के साथ-साथ अष्टाध्यायी न्यूनतम 4 अध्याय कण्ठस्थ होगी, वह विद्यार्थी प्रवेश परीक्षा के उत्तीर्ण होने पर कक्षा 8 में भी प्रवेश पा सकता है।

गुरुकुल में प्राच्य व्याकरण के साथ-साथ अन्य सभी विषयों का गहनता से अध्ययन कराया जाता है। अतः विद्यार्थी का मेधावी होना आवश्यक है, इसलिए अभिभावक मेधावी, सुशील विद्यार्थी को ही प्रवेशार्थ लायें।

गुरुकुलीय परिवेश पूर्णतः वैदिक संस्कारों से परिपूर्ण है, इसके साथ ही भोजन, आवास एवं अध्ययनादि की व्यवस्था भी अति उत्तम है, आर्यजन इसका लाभ उठाकर अपनी संतानों को शिक्षित, सक्षम, संस्कारवान एवं चरित्रवान्, राष्ट्रभक्त तथा ऋषिभक्त बनाकर व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करें।

बालक ब्रह्मचर्य व्रतधारें, धर्म कर्म भरपूर करें।
ब्रह्म-विवेक-प्रकाश पसारें, मोह महातम दूर करें।।
युक्ति प्रमाण-तर्क पटुता से, भ्रम को चकनाचूर करें।
पन्थ न पकड़ें मतवालों के, साधु स्वभाव न क्रूर करें।।
सरल सुलक्षण संतानों को, संयमशील सुजान करो।
गुरुकुल पूजो वैदिक वीरो, विद्या बल धन दान करो।।

आचार्य स्वदेश
कुलाधिपति
चलभाष: 9456811519

आचार्य हरिप्रकाश
प्राचार्य
(9457333425, 9837643458)

thearyasamaj.org

चुनी बातें जो मैं हर सम्मेलन में सुन चुका था, कही गईं। सम्मेलन के बाद उपदेशकों और विद्वानों की दक्षिणा के प्रति लोलुपता देखती ही बनती थी। पदाधिकारियों ने अपनी पीठ खूब थपथपाई। एक दूसरे को मालायें पहनायीं, एक दूसरे की प्रशंसा की, चन्दा का पैसा खा पीकर बराबर किया। संसार के उपकार का काम एक इंच भी आगे नहीं बढ़ा। एक दूसरी जगह समाज सम्मेलन में गया वहाँ महिला सम्मेलन चल रहा था। सारे सम्मेलन में वक्ताओं ने नारी जाति के उत्थान के लिए कोई विस्तृत योजना न रखी। न कोई चिन्तन रखा, न कोई कार्य योजना प्रस्तुत की। सारा समय महिलाओं की चापलूसी के गीत गानों में निकाला। कबीरदास, तुलसीदास और जगद्‌गुरु शंकराचार्य को गाली देने में ही सारा समय व्यतीत कर दिया। इन महापुरुषों ने किन परिस्थितियों में किस मानसिक उच्चावस्था को प्राप्त कर किस दृष्टिकोण को लेकर नारी शब्द का प्रयोग किया, उसका कोई अनुमान व्याख्यान देने वालों को नहीं था। एक व्याख्यान करने वाले ने शंकराचार्य जी की इस बात की कठोर निन्दा की, कि उन्होंने लिख दिया है कि **द्वारं किमेकं नर्कस्य नारी**। अर्थात् नर्क का एक ही द्वार है वह है नारी। सम्मेलन के बाद मैंने उक्त प्रवक्ता से पूछा कि क्या सीता रावण के लिए नर्क का द्वार नहीं हो गई थी, क्या द्रोपदी को गलत आचरण से परेशान करके कीचक ने अपने लिए नर्क का द्वार नहीं खोल लिया था। इसमें सीता और द्रोपदी की निन्दा कहाँ है। यदि शंकराचार्य ने इसी भाव से लिख दिया तो क्या दोष है? इसका उनके पास कोई उत्तर नहीं था। इस प्रकार इन औचित्य हीन सम्मेलनों से न संसार का उद्धार होगा, और इसके बिना आर्यसमाज का उद्‌देश्य भी पूरा नहीं होता है। अनेकों स्थानों पर बड़ी बिडम्बना ये हुई कि समाज के सम्मेलन मेंउन्हीं भजनों, चुटकुलों और दृष्टान्तों को एक उपदेशक सुना गया। दूसरे दिन दूसरा उपदेशक आया उसने भी वही भजन और वही दृष्टान्त सुनाए और वही घटना बड़े मनोरंजक ढंग से अपने जीवन में घटी बताई। इससे श्रोताओं पर बड़ा गलत असर पड़ा। सभा के बाद एक व्यक्ति ने हमसे कह ही दिया कि महाराज जी इन दोनों वक्ताओं में कोई एक झूठा जरूर है। ऐसे झूठे वक्ताओं से आर्यसमाज का प्रचार होना कैसे सम्भव होगा। जबकि स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में लिख दिया है कि सत्योपदेश के बिना मनुष्य लोक का कल्याण सम्भव नहीं है। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए हम समाज के सम्मेलनों को आयोजित करने वाले कार्यकर्त्ताओं से निवेदन करते हैं कि वे सम्मेलनों में वही विषय रक्खें, जो वहाँ उपस्थित जन समुदाय के लिए उपयोगी हो। और वक्ताओं को भी इस बात के लिए बाध्य करें कि वे असत्य बातों का सहारा लेकर अपने व्याख्यान को मनोरंजक बनाने के उद्‌देश्य से सत्य से दूर न ले जायें। व्यक्ति का निर्माण पंचमहायज्ञों की प्रक्रिया में समाया हुआ है। उनमें ही सारी वैयिक्तिक और सामाजिक समस्याओं का समाधान निहित है। वे ही सामान्य लोगों के लिए अत्योपयोगी हैं, उन्हीं पर चिन्तन करना व रखना अधिक प्रशस्त होगा। सत्यार्थ प्रकाश, संस्कारा विधि, ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका आदि के द्वारा प्रस्तुत की गई विधि निषेध की परम्परा को ही आगे बढ़ायें। तभी आर्यसमाज का उद्‌देश्य पूर्ण होगा और सम्मेलनों का लाभ भी भरपूर होगा। व्यक्तियों के हित की बातें भी जब उनके समझ में आयेंगी तो वे निश्चित रूप से आर्यसमाज की ओर आकर्षित होंगे। जिससे उनकी शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति होकर पूर्ण लाभ होगा। आशा और विश्वास है सम्मेलनों के आयोजनकर्त्ता अवश्य ही इस बात पर ध्यान देकर सम्मेलनों के औचित्य को सफल करेंगे। और आर्यसमाज के विस्तार के पवित्र कार्य को पूरा कर पुण्य के भागी बनेंगे। इसी में सबका हित है अनावश्यक धन व शक्ति के व्यय करने से कोई लाभ नहीं।

❁❁❁

thearyasamaj.org

'तपोभूमि' अप्रैल 2015 R.N.I. No. 2321/57 रजि. सं. MTR नं. 04/2013-15

सत्य प्रकाशन मथुरा के अनमोल प्रकाशन

शुद्ध रामायण (प्रेस में)		शुद्ध सत्यनारायण कथा	10.00
शंकर सर्वस्व	120.00	महिला गीतांजलि	10.00
मानस पीयूष (रामचरित मानस)	100.00	क्या भूत होते हैं	10.00
नारी सर्वस्व	60.00	आर्यों की दिनचर्या	10.00
शुद्ध कृष्णायण	50.00	महाभारत के कृष्ण	8.00
शुद्ध हनुमच्चरित (प्रेस में)		ब्रजभूमि और कृष्ण	8.00
महाभारत के प्रेरक प्रसंग	40.00	सच्चे गुच्छे	8.00
विदुर नीति	40.00	मृतक भोज और श्राद्ध तर्पण	8.00
वैदिक स्वर्ग की झांकियाँ	40.00	नवग्रह समीक्षा	6.00
चाणक्य नीति	40.00	आर्यसमाज और श्रीराम	6.00
वेद प्रभा	30.00	आचार्य श्रीराम शर्मा : एक सरल चिन्तन	5.00
शान्ति कथा	30.00	वृक्षों में जीव है या नहीं	5.00
नित्य कर्म विधि	30.00	गायत्री गौरव	5.00
संगीत रत्नाकर प्रथम भाग	25.00	महर्षि दयानन्द की मान्यतायें	5.00
बाल सत्यार्थ प्रकाश (प्रेस में)		सफल व्यक्तित्व	5.00
यज्ञमय जीवन (प्रेस में)		सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ	5.00
दो बहिनों की बातें	25.00	मुक्ति प्रदाता त्रिवेणी	5.00
दो मित्रों की बातें	25.00	जीजा साले की बातें	5.00
मील का पत्थर (प्रेस में)		भागवत के नमकीन चुटकुले	5.00
सुमंगली (प्रेस में)		आदर्श पत्नी	5.00

आवश्यक सूचना

1. पाठकगण वर्ष 2015 के लिये वार्षिक शुल्क 150/- रूपये अविलम्ब भिजवायें तथा पन्द्रह वर्ष की सदस्यता हेतु 1500/- भिजवायें।
2. पत्रिका भेजने की तारीख प्रतिमाह 7 व 14 है, कृपया ध्यान रखें।

बुक-पोस्ट
छपी पुस्तक/पुस्तिका

सेवा में,

....

....

....

....

.... पिन कोड ....

पत्र व्यवहार का पता :-
व्यवस्थापक - कन्हैयालाल आर्य
सत्य प्रकाशन
डाकघर- गायत्री तपोभूमि, वृन्दावन मार्ग
(आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग), मसानी चौराहे के पास,
मथुरा (उ० प्र०) 281003
फोन (0565) 2406431
मो. 9759804182

Yogendra # 9927136600

स्वामी, प्रकाशक, सम्पादक आचार्य स्वदेश के लिए रमेश प्रिन्टिंग प्रेस, पंचवटी, मथुरा में छपकर सत्य प्रकाशन मथुरा से प्रकाशित